कँटीले प्रश्न

चलते-चलते उसे बेहद थकान और ऊब महसूस हुई। उसे लगा कि टूटन धीरे-धीरे उसे अजगर की तरह निगल रही है। लाचार होकर वह पब्लिक पार्क के शेरों वाले पिंजरों के आगे रुक गयी। पलभर उसने वहाँ के वातावरण का जायजा लिया। फिर सुरक्षा के लिए लगायी हुई मोटी जंजीर पर बैठने के पूर्व उसने लम्बी साँस ली। उसे बहुत ही धीमे-धीमे हिचकोले आ रहे थे और उसकी उखड़ी-उखड़ी व थकी-थकी दृष्टि उड़ती हुई कई रोज से बंद पड़ा थियेटर की खामोश दीवारों पर घूमती हुई एक कबूतर के जोड़े पर टिक गयी जो आपस में चोंचें लड़ा रहे थे। जोड़ा हुमक रहा था।

उसके साथ मनसा थी। मनसा अत्यन्त ही उत्सुकता से रीछ को देख रही थी जो अपनी गर्दन पेड़ के सूखे तने से रगड़ रहा था।

शेर अलमस्त-सा सोया हुआ था। सिंहनी मनसा को जब भी देखती थी, घूरकर देखती थी। मनसा उसके काफी नजदीक थी जिससे सिंहनी की बदबूदार साँस का भभका मनसा पर बार-बार झपट जाता था और वह अपनी नाक रुमाल में बंद कर लेती थी।

"यह सिंहनी बड़ी खूँखार है। एक बार एक लड़के ने सोये हुए शेर पर पत्थर मारा तो सिंहनी दहाड़ मारकर उस पर झपट पड़ी। उसकी भयावह दहाड़ से वह लड़का पसीना-पसीना हो गया। सलाखें नहीं होतीं तो बेचारा…।" लड़का दुष्कल्पना से घिर-सा गया।

दूसरे लड़के ने कहा, "औरतजात होती ही ऐसी है।"

मनसा ने तत्काल पलटकर उनकी ओर देखा। दो निहायत ही व्यक्तित्वहीन लड़के यह बातचीत कर रहे थे। उसने एक पल सुस्त बैठी हुई मृणाल की ओर ताका। फिर उसने हवा में शब्द उछाला, "घोंचू कहीं

के ! ...शीशे में चेहरे देख लें तो इनकी सारी गलतफहमी ही दूर हो जाय।"

दोनों लड़के चौंके।

उसने उन्हें घृणाभरी तीखी नज़र से देखा। लड़के सहम-से गये। उन्हें लगा कि लड़कियाँ बोल्ड हैं और वे चुपचाप खिसक गये।

पसरी हुई भीगी खामोशी को पीती हुई वह मृणाल के सन्निकट आयी। उसने अपना हाथ उसके कधे पर कोमलता से रखा। फिर गहरे अपनेपन से कहा, "यार ! इस जवानी में मुर्दार की तरह जीना मुझे पसन्द नहीं। जरा बदन मे चुस्ती रखा करो।"

"पता नहीं, मेरे बदन मे व्यर्थ की चुस्ती क्यों नहीं रहती ?" वह बड़े ही शांत भाव से खड़ी हो गयी। उठने पर जजीर आहिस्ता-आहिस्ता हिलने लगी।

मनसा ने अपने बेल-बाटम की जेब मे से एक टेबलेट निकालकर कहा, "इस गोली को निगल जाओ। दिनभर बड़ी चुस्ती व मस्ती रहेगी। तुम्हें यह धरती आनंदमय लगेगी। सारे दुख भूत की तरह गायब हो जायेंगे।"

"सॉरी मनसा !" मृणाल ने साफ इन्कार करते हुए कहा, "मेरा किसी भी नशे-वशे मे कोई विश्वास नहीं है। मैं तुम्हारी तरह केवल मस्ती के लिए नहीं जी सकती। मुझे तुम्हारी तरह जीने के पैटर्न मे विश्वास नहीं है।"

"तुम्हारा तो किसी भी तरह जीने मे विश्वास नहीं है, तुम्हारा तफरीह-बाजी मे विश्वास नहीं है, तुम्हारा प्यार करने मे विश्वास नहीं है...बेचारा जगपाल तुमसे शादी करने को तैयार है पर तुम्हारा शादी में भी विश्वास नहीं है। तुमने एक जबरदस्त पूर्वाग्रह जगपाल के बारे मे बना रखा है कि यह काइयाँ किस्म का आदमी है...वह कभी भी अच्छा पति नहीं बन सकता।...जबकि वह एक भला व शरीफ आदमी है, सम्पन्न है।" मनसा एक राजनीतिक नेता की तरह भाषण कर रही थी। उसके स्वर में हल्का उपालम्भ व आक्रोश था। सहसा स्कूटर की अत्यन्त ही अप्रिय आवाज ने उनके बीच की बातचीत को निर्ममता से रौंद दिया। कदाचित् उस स्कूटर का सायलेंसर टूटा हुआ था।

वे दोनों इन्दिरा फाउन्टेन (चुनाव के बाद जिसके नामपट्ट पर रंग

पोत दिया गया था) के समीप आ गयी थी। फव्वारा बन्द था। फिर भी चंद लोग उस पुते हुए नाम को देख-देखकर विभिन्न भाव चेहरों पर ला रहे थे। लम्बे-लम्बे सांस लेकर कुछ फब्तियाँ कस रहे थे। चंद लोगों की आँखों में इस टुच्चेपन के प्रति पछतावा भी था और वे इसे ओछी व बदले की कार्यवाही कह रहे थे। उनके स्वर में हल्की पीडा का अहसास भी साफ झलक रहा था।

मनसा ने मृणाल की ओर भौंहें नचाकर सकेत किया, "इस बोर्ड पर रग पुत गया है।"

"तुम इस सकेत से मुझे क्या कहना चाहती हो?" उसने तनिक झल्लाकर कहा। उसके स्वर मे रूखापन था।

मनसा थोडी देर के लिए दार्शनिक बन गयी। मेघाच्छन्न आकाश की ओर देखकर उसने एक वाक्य तेजी से उछाला, "वक्त किसी का लिहाज नही करता। वह निर्दयता से आदमी को कुचलता निकल जाता है। हर चीज पर एक-न-एक दिन नया रग चढ जाता है।"

मृणाल ने अनुभव किया वह वाक्य हवा मे पल के लिए टँग गया है, फिर वह बाज की तरह झपटा और उसे कई खरोंचें दे गया। वह काफी गंभीर हो गयी। उसके चेहरे पर लहूलुहान उदासी की परत छा गयी। उसने जिन्दगी को जिन्दगी समझकर 'वर्तमान' को पी जाने वाली मनसा को गौर से देखा।

मनसा का ध्यान एक ऊँचे पेड़ की ओर था। उसने पूर्ववत् स्वर मे कहा, "मेरी जान! क्षण को जीना ही बहुत कठिन है। क्षण मे ठहराव नही। वह सोचने का वक्त भी नही देता। फिर आदमी जीवन को तो जबरदस्ती भी जी सकता है, लेकिन पल को जीना सहज नहीं है।···ओ तांगेवाले!"

एक तांगा जाते-जाते रुका। मनसा ने समीप जाकर पूछा, "होटल चलेगा?"

"जरूर चलूंगा, मेमसाब!"

"कितने पैसे?"

"जो ठीक समझें आप दे दें।

"नहीं भाई, बता दो।"

"क्या बताऊँ ? आपका तो हर रोज का काम है। जो वाजिब समझें वह दे दीजिएगा।" दोनों ने एक-दूसरी को देखा और फिर ताँगे पर बैठ गयीं। ताँगा चल पड़ा।

पब्लिक पार्क के बाहर निकलकर डूँगरसिंह की प्रतिमा के सन्निकट-स्थित हनुमान के मंदिर के आगे मृणाल ने यंत्रवत् सिर झुकाया।

मनसा के अधरों पर अर्थभरी मुस्कान दौड़ गयी। वह बोली, "यू ओल्ड ···।"

"ओल्ड इज़ गोल्ड।" उसने जूनागढ़ पर दृष्टि फेंककर कहा।

ताँगेवाला टिक्-टिक्-टिक्-टिक्···करके घोड़े को हाँक रहा था। घोड़ा भाग रहा था। कभी-कभी ताँगेवाला चाबुक का भी प्रयोग करता था। कभी-कभी झल्लाकर अपनी अप्रिय आवाज़ में कह देता, "अबे गधे के बच्चे, भागता क्यों नहीं ?"

ताँगेवाला मुसलमान था। मैले-कुचैले कपड़े। पीले दाँत। खिचड़ी-नुमा काले-श्वेत बाल।

वे बीकानेर के सूरसागर तालाब के आगे निकले ही थे कि राजन का स्कूटर दिखायी पड़ गया। मनसा की आँखों में प्रसन्नता के अंगारे चटक गये। उसकी आँखें सहसा अग्निफूल-सी प्रतीत हुई। वह चचल हो उठी।

मृणाल ने चिढ़कर व्यंग में कहा, "लो तुम्हारा तो वह आ गया। जरूर तुम्हें सारे पार्क में ढूँढकर आया होगा।"

मनसा ने गर्व से कहा, "यह उसकी ड्यूटी है।"

"तुम्हारे लिए यह बेचारा पागल है।"

"मेरे लिए ?···अरे जानेमन ! मुझ पर लड़के तो क्या तुम्हारी जैसी लड़कियाँ भी फिदा हैं। तुम भी तो मुझे छोड़ती नहीं।" वह एक पल रुक-कर जरा आश्चर्य से बोली, "वैसे हर मर्द मूलतः औरत के लिए पागल ही होता है।" उसने सूक्ति उगली।

"पर औरत को एक व्यवस्थित जीवन जीने के लिए मर्यादा के काँटे चारों ओर लगा लेने चाहिएँ।"

"यह ट्रेडिशनल स्त्रियों का काम है।" मनसा ने बेझिझक होकर कहा,

"मैं तुम्हें एक बात कहूँ ?"

"कहो।"

"तुम दरअसल मेरी फ्री लाइफ और मस्ती से जलती हो। तुम्हें मुझसे और मेरे बॉय-फ्रेंड से जलन है।"

"माई फुट !" मृणाल ने बैठे-बैठे अपना दायाँ पाँव पटका। मनसा ने इस ओर जरा भी ध्यान नहीं दिया, क्योंकि राजन का स्कूटर ताँगे के काफी नजदीक आ गया था। दोनों की आँखें टकरायीं। विश हुआ। मृणाल को भी राजन ने विश किया। पर मृणाल ने कोई रिसपोंस नहीं दिया। बल्कि एक उपेक्षा एवं तिरस्कार का हल्का भाव उसकी आँखों में झिलमिलाया।

मनसा बेचैनी से कसमसायी और बोली, "ताँगा रोको, बाबा ! ताँगा रोको !"

"क्यों ?" मृणाल चिढ़ गयी।

"यार, मैं जरा राजन के साथ एक जरूरी काम से जाऊँगी। इसे मैंने टाइम दया था। यह किसी कारण लेट हो गया है। फिर मैं तुम्हारे साथ बोर भी काफी हो चुकी हूँ। कुछ अपने को फ्रेश तो कर लूँ। ताँगा रोको !"

मृणाल को लगा कि मनसा ने उसको निर्ममता से फिर कोंच दिया है।

"लेकिन होस्टल पहुँचने का वक्त हो गया है।" मृणाल ने अपनी उत्तेजना को दबाते हुए कहा।

"डार्लिंग !···चौकीदार और वार्डन मेरे पढ़ाये हुए हैं। बस, तुम कोई खास गड़बड़ी न करना। यदि आज तुमने जरा भी गड़बड़ी की तो मैं होस्टल छोड़ दूँगी। समझी ?" ताँगा रुक गया। मनसा ने बड़ी बेहूदगी से उसे एक कनखी मारी और वह उतरकर स्कूटर की पिछली सीट पर बैठकर हाथ हिलाकर बोली, "बाय-बाय···माई डार्लिंग !"

जब स्कूटर मृणाल की आँखों से ओझल हो गया तो उसे लगा कि एक अजीब-सा जबड़ों वाला सन्नाटा उसे काटने लगा है। यदि घोड़े की ठप्प-ठप्प सुनायी नहीं देती तो वह भीतर से भी भयभीत हो जाती, फिर गुनगुनाकर मौजूदा परिवेश से भागना चाहती। लेकिन जबड़ों वाला सन्नाटा और तीखा हो गया। उसने नयन मूँद लिये। ताँगा चल रहा था।

होस्टल मे आने से लेकर आज तक मृणाल अपने-आपको मौजूदा-फैशन, बोल्डनेस तथा नंगी आधुनिकता से बचाती आयी है। उसने कभी भी खुले रूप में रूढ़िगत मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया और न ही उसने किसी लड़के को बॉयफ्रेंड के हिसाब से लिफ्ट ही दी। यह अलग बात है कि जगपाल ने उससे गंभीर मित्रता के माध्यम से विवाह की बात कह दी जिसे उसने उसे हड़पने का नाटक ही समझा।

वह अपने को शालीन और आदर्शमयी बताकर अपने-आपको मां-बाप के प्रति ईमानदार प्रकट करती थी। उसे मुक्त जीवन और उच्छृंखलता ज़रा भी सहन नहीं होती थी। इसलिए वह मनसा को फ्लर्ट किस्म की लड़की कहती थी। पर वह उससे मित्रता भी सम्पूर्ण रूप से क्या, एक पल के लिए भी नहीं तोड़ सकती थी। कहीं उसमे ऐसी भीषण दुर्बलता थी जो उसे संबधो के टूटने की चरम स्थिति तक पहुँचने नहीं देती थी। कहीं कोई ऐसा अटूट जुड़ाव था जो खंडित नहीं हो रहा था। हालांकि मृणाल ने कई बार धमकी भी दी थी कि वह मनसा से अलग हो जायेगी, उसकी रूम-मेट न रहेगी। पर मनसा के सामने पड़ते ही वह उसे आतंकित करने के अलावा कुछ भी नहीं कर पाती थी।

और मनसा भी ऐसी मिट्टी की बनी थी कि वह मृणाल की किसी बात का बुरा नहीं मानती थी। हर शिकवे-शिकायत व आरोप-प्रत्यारोप को हँसकर टाल देती थी। कह देती थी, "जीवन चार दिनो का है। पता नहीं, कब मौत अपने दानवी जबड़ों में भींचकर रख दे।···मृणाल डार्लिंग! तुम्हें मुझसे बड़ी शिकायतें हैं। मेरी जीवन-पद्धति भी तुम्हें पसंद नहीं है। वैसे तुम भी मुझे लवली लगती हो। रूम-मेट के रूप में तुम्हारा कोई जवाब नहीं। जब तुम्हें बाहों में भरकर सोती हूँ तब, राम कसम मुझे राजन याद आ जाता है।"

"फिर उस आवारा का नाम लिया ? वह तुम्हें बरबाद कर देगा।"

"कोई बात नहीं।"

तांगे ने धचका खाया। उसका ध्यान टूट गया। देखा तो होस्टल आ गया था। मृणाल उतरी और तांगेवाले को किराया देकर वह अपने कमरे में चली गयी। वहाँ होस्टल की नीरस, एकरसता-भरी एवं अनुशासनबद्ध

जिन्दगी, ...बिल्कुल ऊबी-ऊबी और बोझिल वातावरण से लदी हुई। वह एक अजीब-सी झुंझलाहट से भर गयी। उसने सामान व बैग को फेंक दिया और बिस्तर पर पड़ गयी। उसके मन में अजीब सा-कोहरा छा गया था। एक अस्पष्टता थी उसके भीतर।

वह क्यों मनसा से जलती है ? वह साफ-साफ उससे अपने संबंधों को क्यों नहीं कह देती ? वह क्यों आत्मवंचना की घाटियों में भटकती है ? वह क्यों उसके सामने राजन की निंदा करती है ? क्यों उसे वह आधुनिक जीवन और फैशन के बारे में आतंकित करती है ? क्यों...क्यों...क्यों ?

कई कँटीले प्रश्न उसे दंश-पीड़ा देने लगे। वह क्यों राजन का नाम सुनकर घृणा, उत्तेजना और बौखलाहट से भर जाती है ? ...और फिर क्यों रात को उसे अपने साथ लेकर सोती है ?

उसे लगा कि बेमौसम का कोहरा उसके कमरे में घुस आया है और उसे अपने धुंधले हाथों से दबोच रहा है।

वार्डेन ने राउन्ड मारते हुए मृणाल का ध्यान भंग करके पूछा, "मनसा कहाँ है ?"

मृणाल की इच्छा हुई कि वह कह दे कि मनसा अपने प्रेमी के साथ तफरीह करने गयी हुई है, पर वह ऐसा नहीं कह सकी। किन्हीं अदृश्य हाथों ने उसका गला टीप दिया। वह सफेद झूठ बोली, "मनसा तो मेरे साथ नहीं थी मैडम ! ...वह तो कब की मुझसे अलग हो गयी थी।"

"वह किसी दिन होस्टल को बदनाम करके छोड़ेगी।" वार्डेन के स्वर में कटुता थी।

वह नीचे आयी तब मनसा दरवाजे में घुस रही थी। वार्डेन एकदम धुआँ-फुआँ हो गयी। चौकीदार अपनी अंटी में कुछ दबा रहा था।

मनसा ने जैसे ही वार्डेन को देखा, वैसे ही कहा, "हलो मैडम, देखिए आप गुस्सा मत होइए। आज मैं लेट सिर्फ आपके कारण हुई हूँ।"

"मेरे कारण ?" वह चीख पड़ी, "व्हाट ?"

"हाँ, मैडम, आपके कारण।" उसने बड़े ही संयत स्वर में गम्भीर मुद्रा बनाकर कहा, "मैं आपके लिए एक ब्लाउज पीस लेने चली गयी थी, वह भी जपानी सिल्क का।"

कॉरीडोर की दीवार पर कुहनियाँ टेककर खड़ी-खड़ी मृणाल मनसा का नाटक देख रही थी। मनसा अत्यन्त ही अभिनयपूर्वक कह रही थी, "मैडम ! मैं जैसे ही होस्टल की ओर आने लगी तो मिस तिलोत्तमा मिनर्वा थियेटर के पास मिल गयी। बोली, 'मनसा डार्लिंग, मेरे पड़ोस में हज के यात्री आये हुए हैं, साथ मे बहुत ही शानदार ब्लाउज पीसेज लाये हैं।' ...बस, मैं उनका लोभ संवरण नही कर सकी, मैं चली गयी। मैं आपसे माफी माँगती हूँ।" उसने ब्लाउज पीस दिखाया।

मृणाल ने देखा कि मैडम की आँखें उस चमकदार ब्लाउज पीस को देखते ही चमक उठी हैं। उन आँखों मे लालच था। मनसा ने वार्डेन के हाथों में ब्लाउज पीस सौंपते हुए कहा, "हिसाब बाद मे कर लूँगी।"

मृणाल के आसपास घुटन की चादर पसर गयी। उसे हवा मे बोझिलपन का बोध हुआ।

मनसा विजयिनी की भाँति नाप-नापकर सीढियाँ चढ रही थी।

मृणाल की इच्छा कमरे में जाने की हुई, पर वह नही जा सकी। उसे *एहसास हुआ कि उसकी कुहनियाँ कॉरीडोर की दीवार से चिपक गयी है।*

"डार्लिंग, देख लिया हमारा चमत्कार ? ...अरे ! मैडम का गुस्सा तो *एक ब्लाउज पीस में गायब हो जाता है।"* मनसा ने आते ही बका।

मृणाल ने आवेश में कहा, "मैं इनकी शिकायत करूँगी। ऐसी कम्पलेंट लिखूँगी कि इनका इस पद पर रहना कठिन हो जायेगा और तुम्हारा होस्टल से बाहर निकलना।"

"इसके लिए तुम्हें एक यूनियन बनानी होगी। यूनियन के बाद नारे लगाने होंगे—इस भ्रष्टाचारी और घूँसखोर वार्डेन को हटाओ।...क्या तुम्हारी जैसी शर्मीली और डरपोक लड़की इतनी तपी हुई बातें कर सकेगी ?" उसने स्वयं ही जवाब दिया, "नहीं - नहीं, तुम तो अपने-आपको ठगने के अलावा कुछ नही करोगी।" मनसा ने नाटकीयता से कहा।

"नही, मैं शिकायत जरूर करूँगी।" उसने दृढ़ता से कहा।

"तो फिर टाँय-टाँय फिस हो जाओगी।...फाइल पर यह नोट लगा *दिया जायेगा कि यह शिकायत व्यक्तिगत द्वेष के कारण की गयी है, अतः*

फाइल दफ्तर-दाखिल कर दी जाय।···जानेमन!" मनसा ने मृणाल को बाहों में जोर से भर लिया जिससे उसके मुख से चीत्कार-सी निकल गयी। फिर उसने उसका चुम्बन लेकर कहा, "अपने-आपको ज्यादा परेशान न करो! मेरी बात मानो और इन सभी झूठे लबादों को उतारकर वास्तविकता को जीओ। जगपाल बुरा नहीं है।"

मृणाल कमरे मे आकर पलँग पर पड गयी। उसकी साँस तेज चलने लगी। वह अपने भीतर साहस बटोरकर बोली, "मैं तुम्हारी आवारगी बर्दाश्त नहीं कर सकती।"

'खट्' से स्विच आन हुआ। ट्यूब लाइट की दूधिया चाँदनी कमरे में पसर गयी। मनसा ने फुर्ती से अपने कपडे उतार दिये। उसने खूँटी पर से अपनी नाइटी उतारी तो उसकी मुद्रा काफ़ी उत्तेजक हो गयी। उसकी दायीं जाँघ का काला लहसन चमक उठा।

वह नाइटी को पहनकर बोली, "जानेमन! मेरी आवारगी के अलावा तुम क्या बर्दाश्त कर सकती हो?"

"मैं केवल अपने-आपको बर्दाश्त कर सकती हूँ।" मृणाल ने तड़ाक से जवाब दिया।

मनसा खिलखिलाकर हँस पडी। वह उसके पास बैठकर बोली, "डार्लिंग, यही तो तुम जबरदस्त झूठ बोल रही हो कि तुम अपने-आपको बर्दाश्त कर सकती हो। तुम केवल दकियानूसीपन और बोदेपन को बर्दाश्त कर सकती हो। अपने भीतर खाँसती-हांफती एक बुढ़िया दादी को बर्दाश्त कर सकती हो। अपने अकेलेपन और अहं को बर्दाश्त कर सकती हो। सही तो यह है कि तुम पाखण्ड को बर्दाश्त करती हो।···मृणाल! समय एक निर्मम निरन्तरता है। उसकी गति मे हम सब द्वीपों की तरह बहते रहते हैं। ये द्वीप वर्तमान हैं और वर्तमान को हम अपनी इन कोमल हथेलियों में बन्द नहीं कर सकते। वह हर क्षण इन हथेलियों की कैद मे से निकलकर मरता रहता है।···बस, मैं इस मरने वाले पल को ही जीती हूँ और तुम उस पल को मारती रहती हो। आखिर तुम ऐसा क्यों करती हो? क्यों नहीं एक सामान्य जीवन जीती?"

"मैं कल निश्चित रूप से किसी और के कमरे में चली जाऊँगी।"

उसने निर्णायक स्वर में कहा। मैं अब तुम्हें बर्दाश्त नहीं कर सकती। यदि तुम्हें मेरे साथ रहना है तो मेरा बनकर रहना पड़ेगा। यह खुलापन मुझे अच्छा नहीं लगता।" वह तीर की तरह बाहर निकल गयी।

सूखी भैंस की खाल की तरह कड़क अँधेरा लटका हुआ था—खिड़की पर। मनसा खिड़की के चौखटे में खड़ी हो गयी। उसे एक क्षण लगा कि वह चौखटे में फँस गयी है। प्रयासों के बाद भी वह चौखटे में से अपने को बाहर निकालने में असमर्थ है।

डोरथी उसके कमरे के आगे रुककर बोली, "खाना खाने के लिए नहीं चलना है?"

"नहीं।"

"क्यों?"

"भूख नहीं है।"

डोरथी चेहरे पर अजीब-सा भाव बनाकर चली गयी।

मनसा सहसा व्यर्थताओं से घिर गयी। वह अपने पलंग पर आकर सो गयी। सोच बैठी, "सचमुच मृणाल पागल है या वह मानसिक रूप से बीमार है?"

सहसा कालेज में मनसा की तबीयत खराब हो गयी। उसे कै होने लगी। चन्द लड़कियों ने उसे पास की डिस्पेन्सरी की लेडी डाक्टर को दिखाया। लेडी डाक्टर ने जाँच करके एक खुशखबरी सुनायी जो मृणाल सहित अन्य लड़कियों को विस्फोट-सी लगी। लेडी डाक्टर ने घोषणा की—"यह सुन्दर गुड़िया माँ बनने वाली है।"

"माँ बनने वाली है!" मृणाल पथरा-सी गयी।

डोरथी ने तीखे स्वर में कहा, "पर यह तो अनमैरिड है?"

लेडी डाक्टर रहस्यमयी मुस्कान के साथ सव्यंग बोली, "शादी का इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। हर स्त्री बिना शादी के भी माँ बन सकती है।"

सबकी आँखों में घृणा की चिंगारियाँ जल उठीं। वे ऐसे खिसक गयीं जैसे सायरन सुन कर युद्धक्षेत्र में मानव खाइयों में दुबक जाते हैं। केवल

मृणाल खड़ी थी—चुपचाप, एक निर्जीव खम्भे की तरह।

मनसा ने उस सन्नाटे को भंग करते हुए कहा, "तुम क्यों नहीं भागती? यहाँ खड़े-खड़े क्यों समय बरबाद कर रही हो?"

"देख लिया तुमने खुलेपन का नतीजा? बताओ, अब तुम कैसे जीओगी?" मृणाल ने घृणा से कहा।

"इसमें मरने की क्या बात है?" वह सहज स्वर मे बोली, "मैं माँ बन रही हूँ। राजन के बच्चे की माँ।"

वे दोनों डिस्पेन्सरी से बाहर आ गयी। सड़क पर सोये सन्नाटे को घोड़े की टापें जगा रही थीं।

"अब तुम्हें होस्टल छोड़ना पड़ेगा। पढ़ाई को तिलांजली देनी होगी। तुमने अपने-आप अपने जीवन को तबाह कर लिया। मैंने हज़ार बार कहा था कि नारी सम्पूर्ण मुक्ति से नहीं जी सकती। यह आधुनिकता का फैशन की तरह वरण एक खतरनाक खेल है। देखा इस खतरनाक खेल खेलने का नतीजा? लोगों की घृणाभरी आँखें तुम्हारे शरीर मे छेद कर देंगी।"

"मैं किसी की चिन्ता नहीं करती।" मनसा ने बड़ी दृढ़ता से कहा, "मैं आज ही होस्टल की पढ़ाई छोड़कर राजन के साथ चली जाऊँगी। मैंने आधुनिकता को फ़ैशन की तरह नहीं, वैल्यूज़ के रूप में अपनाया है।"

"सब-कुछ अधूरा रह जायेगा तुम्हारा।" मृणाल ने पीड़ा से आहत होकर कहा, "इस अधूरेपन का जीवन बड़ा ही तिलमिलाने वाला होता है।"

"मैं सम्पूर्णता से जी रही हूँ।" उसने दृढ़ता से कहा।

"तुम हठी हो।" उसने आरोप लगाया।

"मतलब?"

"तुम अपनी हार को हार नहीं मानती।"

"मैं हारी हूँ या जीती हूँ, यह तो समय ही बतायेगा।"

वे दोनों ताँगे से उतरकर होस्टल आ गयी। मनसा अपना सामान बाँधने लगी। मृणाल को सहसा कोई कचोटने लगा कि इतनी निर्भीकता से यह यहाँ से जाकर उसे कहीं से तोड़ रही है, पराजित कर रही है।

मृणाल ने उस घुटनभरी खामोशी को भंग करके कहा, "कहाँ

जाओगी ?"

"एक अच्छे घर में चली जाऊँगी।"

"किसके साथ ?"

"राजन के साथ।"

"समाज और संसार ?"

"मैं किसी की परवाह नहीं करती। चिन्ता है तो मुझे बस तुम्हारी ! सोचती हूँ केवल मुझसे जुड़ी हुई तुम्हारी जैसी लड़की अब अकेली कैसे जीएगी ?"

"मरूँगी नहीं।" वह भड़क उठी।

"यह तो अच्छी बात है।" उसने कन्धे उचकाकर कहा।

मनसा ने अपनी अटैची को उठाकर कहा, "अपनी इस रूम-मेट को याद रखोगी न ?···मृणाल ! जीवन एक खेल-तमाशा है। पता नहीं कब इस जीवन की डोर टूट जाय ! कब साँसों का काफिला खत्म हो जाय ! इसलिए अपनी आत्मा की अनन्त प्यासों को समय पर बुझा लेना चाहिए ताकि मर भी जाएँ तो कोई प्यास बाकी न रहे।" उसकी आँखों में व्यथा तिर आयी। मृणाल ने उसे गले लगा लिया। वह फूट-फूटकर रो पड़ी।

"अपनी इस शत्रु-मित्र को कमजोर न करो। मुझे जीना है अभी। एक बच्चे की माँ भी बनना है। यदि वह कमजोर हो गयी तो जी नहीं पाऊँगी।"

मृणाल मनसा के चेहरे पर दमकती अपार करुणा को देखती रही। यह कैसी पवित्रता है इस पतिता की आकृति पर जैसे मन्त्रों से धोकर इसे असीम सत्ता ने पवित्र कर दिया हो।

मनसा मुस्कराकर बोली, "तुम जिससे सदा अलग होना चाहती थी, जिसे तुम होस्टल से निकल जाने के लिए कहती थी, धमकियाँ देती थी, वह आज स्वयं जा रही है। अब तुम अपने लिए अपने हिसाब की एक साथिन ढूँढ लेना और अपने ढंग से जीना। पर अपनी इस विवाहित सहेली को याद रखना।"

"विवाहित···?"

"अरे डार्लिंग, मैंने और राजन ने कभी की सिविल मैरिज कर ली

थी।"

"क्या ?" उसकी आँखें विस्फारित हो गयीं।

"हाँ, डार्लिंग !"

"नहीं-नहीं, यह तुम झूठ बोलती हो।" मृणाल ने घबराकर कहा।

"तुम भी अजीब लड़की हो। दरअसल तुम वही सब जीना चाहती हो जो मैं जी रही हूँ। तुम अपने-आप और अपने दिखाऊ परिवेश से फेंड-अप हो चुकी हो।···अच्छा जानेमन, आखिरी सलाम।" और मनसा ने उसे दबोचकर आलिंगन में भर लिया।

मृणाल ने उसे हिंस्र दृष्टि से देखा।

मनसा अलग हो गयी। भय की अज्ञात भावना ने उसे त्रस्त कर दिया। सोच बैठी—इस मृणाल का चेहरा कठोर क्यों हो गया है ? उस पर तरह-तरह के रंग क्यों दौड़ रहे हैं ? उसे तो खुश होना चाहिए कि उसकी सहेली ने पुराने मूल्यों पर लात मारकर अपनी पसन्द के लड़के से विवाह कर लिया है। न दहेज और न व्यर्थ के खर्च। न उत्सव-आयोजन और न तामझाम।···एकदम सादगी से कोर्ट मैरिज।···और यह···? वह अस्पष्ट प्रश्नों से बिंध गयी।

मृणाल उस पर झपटकर बोली, "धोखेबाज···कपटी···स्वार्थी ! तुझे यदि राजन से ही विवाह करना था तो मुझे अपने प्यार की आग में क्यों झोंका ?···क्यों मुझे जानेमन कहा ? क्यों मुझे डार्लिंग कहा ?···मैं तुझे पाना चाहती थी पर तुम···?"

"क्या तुम मुझसे प्यार करती हो ?"

"हाँ-हाँ, तभी तो मैं राजन से जलती थी, तुम्हारी फ्री-लाइफ को टोकती थी···"

"हे राम !" मनसा के मुँह से अनायास ईश्वर का नाम उच्चरित हुआ। वह टूटकर सूखे पेड़ की तरह धम्म से बैठ गयी। उसे महसूस हुआ कि वह गहन गह्वरों में चली गयी है।

लड़कियाँ एकत्रित हो गयीं। वे सब इस नामालूम स्थिति का शांति से जायजा ले रही थीं।

मृणाल बारूद की तरह भड़ककर बोली, "···तुमने मुझे तबाह कर

दिया। मैं तुम्हें कभी भी माफ नहीं करूँगी। तुम्हे जान से मार डालूँगी।"

मनसा की आँखें भर आयी। वह भीगे नयनों से देखकर चुपचाप अपना सामान उठाकर होस्टल के दरवाजे की ओर बढ गयी।

मृणाल क्या चाहती है वह अब भी नही समझ रही थी। लड़की-लड़की को इतना प्यार कर सकती है, यह उसके जहन मे नही था। वह कभी भी ऐसे सम्बन्धो को आत्मसात् नही कर पायी थी, मनोवैज्ञानिक दृष्टि से समझ नही पायी थी।

उसे लगा कि उसके पाँवो में ईंटें बाँध दी गई हैं।

एक तेजतर्रार लडकी ने फिकरा उछाला, "मनसा!...अरे अपने मजनूं को छोड़कर कहाँ जा रही हो यार?"

मनसा ने अपनी पीठ पर तीर लगने का एहसास किया। वह दरवाजे के बाहर हो गयी।

खेल-खिलौने

पाँच वर्ष बाद मैं अपने 'देश' जा रहा हूँ। मेरा देश बीकानेर है और मैं परदेश कलकत्ता में रह रहा हूँ।

गाडी भाग रही थी। कलकत्ता छूटते ही मुझे सबसे पहले छिन्नू का नाम याद आता है।

छिन्नू के नाम के साथ मेरे मस्तिष्क में कई स्मृतियाँ एक-साथ जागृत हो जाती हैं। ये स्मृतियाँ आकाश के तारो की तरह कई आकारों मे होती हैं—फूलों की तरह रंग-बिरंगी होती हैं; मुस्कान-सी मधुर और आँसू-सी खारी होती हैं; जीवन के सफर की तरह बहुत लम्बी और मोहल्ले की गली की तरह बहुत ही तंग होती हैं। ये स्मृतियाँ हमारे जीवन की बहुत बडी सम्बल होती हैं। शेष के रूप में ये ही स्मृतियाँ रह जाती हैं।

ऐसी ही एक लम्बी स्मृति—छिन्नू की स्मृति, बचपन के दिनों की।

सुबह का समय था। छोटे-छोटे मेघ-खण्डो को चीर-चीरकर पूर्व की ओर लालिमा छितरा रही थी। उस छितराती हुई लालिमा मे उड़ता हुआ पखेरू बहुत अच्छा लग रहा था। समीप के महादेव जी के मन्दिर से घण्टा-ध्वनि आ रही थी। मेरी गली मे टूटता हुआ सन्नाटा था। कभी-कभी घड़ों से पानी लाने वाली पनिहारिनों की पायल की रमक-झमक सुनाई पड जाती थी।

छिन्नू पानी ला रही थी। उसका बाप जीतू किसी बनिये के यहाँ रसोइया था और वैष्णव धर्म को मानता था। धर्म के मामले में उसकी कट्टरता बड़ी मशहूर थी। छिन्नू के पैदा होने के तीन वर्ष बाद ही जीतू की पत्नी का देहान्त हो गया था। एक बडी बहन थी जिसका विवाह हो गया था। एक छोटा भाई था जिसका पालन-पोषण ननिहाल मे ही रहा था।

मैं पानी लाती हुई छिन्नू को सदा देखता रहता था। वह मुझे अच्छी लगती थी। वह देखने में अपनी आयु म अधिक ही लगती थी और उस के रगरूप में राजस्थान की कामिनी के चिह्न अभी से प्रकट हो रहे थे। सुतवाँ नाक, भरा-पूरा शरीर, बड़ी-बड़ी आँखें और पतले होठ।

मैं अपने घर के गोखे से उसे कहता था—"छिन्नू, एक मटकी मेरे यहाँ भी डाल दे न ?"

वह मुँह को बिचकाती हुई तेज स्वर मे बोलती थी—"मैं तेरे बाप की नौकरानी नही, कन्धे पर घडा रखकर कुएँ से पानी ले आ।"

वह सदा ही ऐसा उत्तर देती थी और मटक-मटककर घर मे घुस जाती थी। फिर रात को वह मुझे अपने ही घर में मिलती थी। उसका बाप रात को दस-ग्यारह बजे आता था। हम दोनो दिनभर का द्वेष भुलाकर खेल खेलने लगते थे। हमारे पास सभी तरह के खेल-खिलौने होते थे। मिट्टी से बना चूल्हा, तवा, चम्मच, थाली, बेलन औरकटोरियाँ, गुड्डे-गुड़ियाँ, कपड़े के बने घोड़े और ऊँट, जो उसकी नानी छोटे-छोटे कपड़ो को जोडकर बहुत ही उम्दा बनाती थी। हम दोनो उन सभी खेल-खिलौनो को लेकर बैठ जाते। वह बिना मेरी कोई आज्ञा लिए उन खेल-खिलौनों को तरकीब से रखती। एक फटी बोरी बिछाती और कहती, "खेल शुरू करूँ भंवर ?"

"कर।" मैं उसे हुक्म देता।

वह दीया जलाती। दीये का मन्द-मन्द प्रकाश उस कमरे मे कम्पन करता रहता।

वह मुझे अच्छे निर्देशक की तरह हुक्म देती—"तू इस तरह भीतर आना जैसे नौकरी से लौट के आया है और फिर मुझे हेला (पुकार) करना।"

मैं चुपचाप बाहर जाता। दो क्षण तक कमरे के दरवाजे की ओट मे खड़ा रहता, फिर खँखारकर भीतर घुसता और पुकारता—"ऐ !"

वह लपककर खड़ी होती। अपनी हाफ कमीज को पीछे से उलटा करके घूँघट निकालती और समीप आकर इस तरह खड़ी हो जाती जैसे वह मेरी बहू हो, मेरा कोई भी हुक्म सुनने के लिए खड़ी हो। मैं कपड़े उतारने का अभिनय करता हुआ टूटते हुए स्वर में बोलता—"जरा एक

गिलास पानी तो पिला !"

वह झूठमूठ पानी का गिलास लाती और मैं झूठमूठ उसे पीता। फिर पूछता—"रसोई तैयार है ?"

"जी, बस गर्म फुलका बनाना है।" वह अपने मिट्टी के चूल्हे में घास डालती। उसे जलाती। झूठमूठ रोटी सेंकती और मैं झूठमूठ ही उसे खाता और इसके बाद हम दोनों साथ सो जाते। समीप पड़े निर्जीव खेल-खिलौने हमें टुकुर-टुकुर देखते। कांपती हुई दीये की लौ हमारे बचपन पर हँसती, पर हम सदा ऐसे ही खेल खेलते थे।

नौ वर्ष होते-होते हम दोनों के खेल-खिलौने पुराने पड़ गये और ब्राह्मणों की सम्मिलित शादी में छिन्नू की शादी हो गयी। उसके छोटे-छोटे गोरे हाथों पर रचे हुए मेहँदी के मोर मुझे बोलते-से प्रतीत हुए। मैंने उसे दुल्हन के भेष में देखा। तब उसके चेहरे पर विचित्र तरह का उजाला दिखाई पड़ रहा था। वह बहुत छोटी थी पर उसकी आँखों में लाज के डोरे उभर आये थे। उसके होंठों पर रचा हुआ पान बहुत ही आकर्षक लग रहा था। मैं उसके सामने जाकर खड़ा हो गया। उसने लाल कोरी का लहँगा, घटिया किस्म की लाल मलमल की ओढ़नी और लाल ब्लाउज पहन रखा था। उसके बायें हाथ में चाँदी की अँगूठी थी और सिर पर चाँदी का फल-बुँघरू गूँथा हुआ था। पाँवों में बिछुवे थे।

वह मुझे देखकर भोलेपन से मुस्करा पड़ी। बोली, "क्यों, एकदम बीनणी (दुल्हन) लग रही हूँ न ?"

मैं कुछ नहीं बोला। केवल उसे अपलक देखता रहा। थोड़ी देर बाद बोला, "हम आज रात को फिर खेलेंगे न ?"

"हाँ।"

पर हम उस रात नहीं खेल पाये। उसने मुझे व्यथित स्वर में बताया, "काका (बाप) कहता है कि अब तू ब्याह दी गयी है, अब दूसरे छोरों के साथ खेलेगी तो मैं तेरे जूते मारूँगा।"

और दूसरे दिन मैंने सुबह-ही-सुबह देखा कि हमारे खेल-खिलौने सड़क पर पड़े हैं—टूटे-फूटे। मुझे तो बहुत दुःख हुआ। मैंने मौका लगते ही छिन्नू से कहा—"अपने खिलौने गली में पड़े हैं। सब टूट गये हैं।"

"हाँ-हाँ, काका कहता है अब तेरा ब्याह हो गया है, अब तुझे दूसरे लड़कों के साथ खेलना शोभा नही देता। अब हम नही खेल सकते। अब न मैं तेरी बीनणी और न तू मेरा बीन बन सकता है।" वह भर-भर-सी आयी।

"हम लोग भी दस-बीस दिन के बाद कलकत्ता चले जाएँगे।" मैंने उससे कहा।

उसने कोई उत्तर नही दिया।

लेकिन दसवें दिन ही एक भयानक दुर्घटना घटित हुई। उस दिन ज़ोर की बरखा हुई थी। मरुभूमि के ताल-तलैया पानी से भर आये थे। लोगों में नया उल्लास और उत्साह आ गया था। लोग प्यासे पंछियों की तरह तालाबो मे स्न न करने के लिए भाग रहे थे। छिन्नू का पति भी गया। उसे तैरना नहीं आता था। वह स्नान करते-करते सीढियो से फिसल गया। लाख बचाने की कोशिश के बावजूद भी उसे कोई न बचा पाया। मृत्यु अपने अटल नियम पर अडी रही। छिन्नू का सुहाग एक पल में छिन गया।

अपराह्न था।

एक लड़का साइकिल पर भागता हुआ आया। वह छिन्नू के घर मे शीघ्रता से घुसा और उसी तत्परता से बाहर निकला। घर में कुहराम मच गया। मेरे हृदय में अज्ञात आशंका घर कर गयी। मैं भागा-भागा नीचे गया, पर मेरी माँ और बाबू दोनों छिन्नू के घर चले गये थे।

तभी धरती की समस्त करुणा लिये छिन्नू का बाप जीतू रोता हुआ गली मे घुसा। उसे चार आदमियो ने पकड रखा था। वह बुरी तरह से रो रहा था। छाती-सिर पीट रहा था। मेरी आँखों मे भी आँसू भर आये। देखते-देखते सारी गली भयानक रुदन से भर गयी।

शाम तक लोग उसे जलाकर आ गये। बारह दिन के बाद मैं छिन्नू से मिला। उस अबोध बालिका के चेहरे को प्रकृति ने एक अजीब उदासी और मुरझायेपन की रेखाओं से भर दिया था। ऐसा लगता था कि इस मौत की मार्मिकता को न समझते हुए भी किसी अदृश्य विषाद ने उसे घेर लिया था।

मैंने कहा, "छिन्नू, तू इतने दिन तक बाहर क्यों नहीं आयी ?"

उसने कोमल स्वर मे उत्तर दिया, "मौसी ने बाहर नही आने दिया। वह कहती थी कि मुझे बारह दिन तक घर से बाहर नही निकलना चाहिए।"

"क्यो ?"

"मेरा धणी (पति) मर गया है। भँवर ! धणी मरने पर लोग इतने-इतने दिनो तक क्यों रोते हैं ?"

"मैं क्या जानूँ ?"

"मैं बताती हूँ। मौसी कहती थी कि छोरी की जिन्दगी खराब हो गयी, बेचारी जीते जी मर गयी।"

मैं उसकी ओर प्रश्नभरी दृष्टि से देखता रहा।

उसने फिर डूबे हुए स्वर मे कहा—"देख न, उन्होने मेरे कानों की बालियाँ खोल ली हैं, नाक का तिनखा (काँटा) निकाल लिया है, हाथों की चूडियाँ उतार ली हैं और कह दिया है कि अब मैं रंगीन कपड़े नही पहनूँ।" उसने पलभर मेरी ओर देखा। उसके चेहरे पर दृढता की रेखाएँ थी। वह तनिक कड़ककर बोली—"मैं सब पहनूँगी भँवर ! तू लक्ष्मीनाथ जी के मन्दिर के पास जाकर वापस अपने खेल-खिलौने खरीद लाना। तू मेरा बीन बनना और मैं अब तेरी बीनणी ! ठीक पहले की तरह।"

बीकानेर की गायक जाति मुसलमान ढोलियों की बस्ती के ऊपर बसे लक्ष्मीनाथजी के मन्दिर के पास से मैं खेल-खिलौने फिर ले आया। ये खेल-खिलौने इस बार संख्या में पहले से अधिक थे और सादे ही नही रंगदार भी थे।

हम दोनों ने अपना खेलने का स्थान बदला। सबकी निगाह बचाकर हम दोनो सबसे ऊपर के डागले (छत) पर चले गये, क्योंकि इन दिनों उसके घर में उसकी बड़ी बहन के अतिरिक्त कई निकट के कौटुम्बिक जन भी आते रहते थे ताकि दुःख में डूबे वे अन्य बातों से अपना दुःख भूल जाएँ। किन्तु हमने जैसे ही अपने खेल-खिलौनों को संजोकर तरतीब से

रखा, और उसने मुझे जैसे ही पति स्वीकार किया, वैसे ही उसकी बड़ी बहन लुक-छिपकर दबे पाँव आकर खडी हो गयी। वह हमारे व्यापार को देखने लगी। मैंने उसे जैसे ही पति की हैसियत से छुआ वैसे ही वह चीखती हुई हम दोनों के बीच आयी—"गईयाल (चरित्रहीन), बदमास, तू इसका धर्म विगाड रहा है? जानता नही, यह विधवा है?...और तू राँड जानबूझकर कीचड मे पाँव रख रही है।" उसने दो घूंसे मेरे लगाये। इसके पश्चात् उसने छिन्नू के बाल पकडे। वह बहुत भद्दी गालियाँ दे रही थी। उसका स्वर क्रोध में काँप रहा था। मैं अपराधी की तरह घर आकर चुपचाप बिस्तर पर लेट गया।

खुला आकाश। गहरी होती हुई रात की अपनी खामोशी। उस खामोशी को चीरती हुई छिन्नू की बहन की झल्लाहट-भरी गालियाँ। उन गालियों में केवल छिन्नू को ही ताडना नही थी बल्कि वह अपने-आप और अपने कुटुम्ब को भी कोस रही थी कि उसके घर में ऐसी कुलक्षणी क्यों जन्मी?

मुझे भय लग रहा था। भय से मुक्ति पाने के लिए मैंने अपने पिताजी से पूछा—"बाबू, ये तारे छोटे-बड़े क्यो हैं? ये टूटते क्यों हैं?"

पिताजी मुझे समझाते रहे। इस दौरान उन्होने मुझे राजकुमार ध्रुव की कहानी सुना दी। कहानी खत्म होते-होते मुझे नींद आ गयी।

स्मृति का परत उठ गया। कोई स्टेशन आ गया था। कालका मेल चन्द मिनट ठहरकर फिर भाग चली। सोने के पूर्व मैं मन-ही-मन हँस पडा, क्योंकि उसकी बहन ने हमारे रंगदार खिलौनो को गली में फेंक दिया था।

खिलौने दो बार टूटे। मैं भी अपने बाप के साथ कलकत्ता आ गया था।

दूसरे दिन मैं अपनी स्मृति के तारतम्य को नहीं जोड सका। दिल्ली से ट्रेन की बदली करने के बाद फिर छिन्नू की याद आयी। मैं कई वर्षों के बाद बीकानेर जा रहा था। इस बार मैं अकेला था, नितान्त अकेला। माँ-बाप मर गये थे। बाप ने अपने सेठ के यहाँ अमानत में खयानत कर ली थी जिससे उनकी सारे समाज मे मान-प्रतिष्ठा चली गयी थी, जिससे मेरा पुष्करणा-समाज मे अभी तक लाख प्रयत्नो के बाद भी विवाह नहीं हो

सका था। मैंने कलकत्ता में रहकर अपने जीवन का नया निर्माण किया। मैं एक लेखक बन गया था। यदाकदा मेरी कहानियाँ भी पत्रों में छपने लगी थीं।

मैं बीकानेर पहुँचा।

मैंने अपने सूने घर में कदम रखा। पास-पड़ौस के लोग मुझे सच्ची-झूठी सांत्वना देने आये। लोगों ने मेरे व्यक्तित्व की प्रशंसा की और मुझे निरपराध बताया। इस निराधार मौखिक सहानुभूति से मेरी आत्मा और संतप्त हो उठी। मैं शीघ्र ही यह चाहने लगा कि मैं इन व्यक्तियों से छुटकारा पा जाऊँ, क्योंकि हर पल छिन्नू को देखने की मेरी लालसा बढ़ रही थी। आखिर सब चले गये तो मैं छिन्नू के घर गया। वह अकेली थी। कूँडी के पास बैठी कपड़े धो रही थी। मुझे देखते ही वह सकपका गयी और फिर हल्की मुस्कान होठों पर बिखेरती हुई बोली—"आप!"

"मुझे पहचाना नहीं? मैं हूँ भँवर।"

वह विस्मय से क्षणिक विमूढ़ हो गयी। उसकी आँखों में अविश्वास की छाया तैर गयी। अधर कुछ कहते-कहते रुक गये।

मैं शब्दहीन किन्तु प्रसन्नता मे डूबी मुस्कान के साथ बोला—"मैं तुम्हारा भँवर हूँ। जानती हो, मैं तुम्हारे लिए क्या लाया हूँ?"

वह निश्चल-सी मुझे देखती रही। उसकी आँखों में कई प्रश्न स्फुलिंग-से चमके और बुझे। झागों से भरे उसके हाथ निष्कम्प लकड़ियों की तरह जिस मुद्रा मे थे, उसी मुद्रा में जड़वत् रह गये थे। उसका मौन मुझे अत्यन्त असह्य लगा। हर पल बोझिल प्रतीत हुआ।

मैंने फिर कहा—"तुम्हें आश्चर्य होता होगा पर यह अत्यन्त स्वाभाविक है। मेरा अप्रत्याशित आगमन तुम्हे अवश्य चौंकायेगा। फिर देखो न, मैं कितना बड़ा हो गया हूँ?"

वह झटके से उठी। उसने जल्दी से हाथ धोये। शिष्टता का ध्यान आते ही उसने मुझे नमस्कार किया। बहुत ही संयत स्वर में बोली—"आप कब आये?"

"आज ही!"

"सब कुशल-मंगल है?" उसने अत्यन्त औपचारिकता दिखाई—

"भोजन न किया हो तो बना दूँ ?"

मुझे लगा कि छिन्नू बदल गयी है। मैंने उदासी से कहा—"मुझे जरा भी भूख नहीं है। पहले तुम मुझसे यह पूछो कि मैं तुम्हारे लिए क्या लाया हूँ ?"

"क्या लाये हैं ?" उसने मेरी ओर बिना देखे ही कहा। शायद वह शिष्टतावश यह पूछ रही हो।

"खिलौने। जानती हो न बचपन···"

वह बीच में ही बोली—"वे दिन गये भँवर बाबू ! मैं विधवा हूँ। उन खेल-खिलौनों की याद न दिलाएँ तो ही अच्छा है। आप फिर आइएगा।"

इतनी रुखाई मैं नहीं सह सका। छिन्नू से मैं बहुत-सी बातें करना चाहता था इसलिए वहीं खड़ा रहा। उसे देखता रहा; वह अनुपम हो गयी थी। उसने मेरी ओर तिरछी निगाह से देखा। शायद वह यह जानना चाहती थी कि मैं जा रहा हूँ या नहीं ? मुझे अटल खड़ा देखकर उसने फिर पूछा—"आप कुछ और कहना चाहते हैं ? खेल-खिलौनों वाली बात को आप बिल्कुल भूल जाइए।"

मैं झेंप गया। मन में छिन्नू को लेकर जो कल्पना और जोश था, वह बिल्कुल ठंडा पड़ गया। फिर भी मैंने कहा और इस तरह कहा जैसे यह मेरी छिन्नू नहीं, एक परिचित भद्र महिला है। मेरे शब्दों में शिष्टता का समावेश हो गया—"आपने हमारे दकियानूसी ब्राह्मण-समाज में एक नया आदर्श स्थापित किया है। हमारी पिछड़ी नारियों के समक्ष आपने एक नयी मिसाल रखी है कि हमारी असहाय लड़कियाँ केवल पापड़ बेल-कर या सेठों के यहाँ काम-काज करके अपने महत्त्वपूर्ण जीवन को नहीं बिताती बल्कि वे पढ़-लिखकर एक सुशिक्षिता, शिष्ट अध्यापिका भी बन सकती हैं।"

"शुक्रिया !"

अब मेरा खड़ा होना असम्भव था। मैं चला आया। अपनी छत पर बैठकर मैं उसके परिवर्तित व्यवहार के बारे में सोचने लगा। जानता था कि वह नाममात्र की विधवा है। हथलेवे के जुड़ने का दोष ही उसके जीवन को एक अनबुझी आग दे गया। हवन-अग्नि की साक्षी और वेद-

ऋचाओं की पवित्रतम गूँजो के वातावरण में वह दुल्हन बनी और अपने अपरिचित प्रीतम की शुभ दृष्टि का आनन्द लिए बिना ही वह विधवा बन गयी।

वातावरण में संगीत-सा भर गया। मैंने देखा कि छिन्नू कपड़े सुखाती हुई थिरक-सी रही है। उसके होठ कुछ गुनगुना रहे हैं। वह कपड़े सुखाकर नीचे चली गयी और मैं बड़ी देर तक वहाँ बैठा रहा। यदि मामीजी आकर मेरा ध्यान भंग न करती तो मैं शायद बैठा ही रहता।

शाम को मैं मामीजी के यहाँ भोजन करके लौटा। छिन्नू ट्यूशन पढ़ाकर लौट रही थी। उसके पीछे उसका बूढ़ा बाप था। हाथ मे लकड़ी लिये वह गिन-गिनकर पाँव रख रहा था। वह उसे भीतर पहुँचाकर चला गया। सुबह, दोपहर, अपराह्न और शाम जब देखो तब उसका बूढ़ा बाप उसके पीछे लकड़ी लेकर चलता रहता था। बाद मे मुझे मालूम हुआ कि बूढ़े का यह सोचना कि जमाना खराब है, इसलिए वह किसी का विश्वास नही करता। वह चूँकि आर्थिक दृष्टि से असहाय है, इसलिए वह नौकरी की बात सह रहा है। वह छिन्नू को मन्दिर जाने के लिए बाध्य करता है और उसने उसे नियमित पूजा-पाठ की आज्ञा दे रखी है, किन्तु छिन्नू हर पल फिल्मी गीत गुनगुनाती थी। पड़ोसी के रेडियो की ताल में अपने पाँवों को इस तरह थिरकाती थी मानो वह अभी नाच पड़ेगी। लेकिन मुझे जैसे ही देखती वैसे ही वह नितान्त गम्भीर हो जाती और अत्यन्त नपे-तुले शब्दो में बातचीत करती। एक दिन आखिर मैं अपना धैर्य खो बैठा।

दोपहर। छुट्टी का दिन। मैं छिन्नू के घर में जा घुसा। वह कोई गीत गुनगुना रही थी। उसके हाथ मे सिनेमा के गीतों की कोई सस्ती पुस्तक थी। मुझे देखते ही उसने उस पुस्तक को छिपा लिया। कुछ हक्की-बक्की हो गयी। मैंने तुरन्त कहा—"इस तरह अपने-आपको कब तक धोका देती रहोगी? अपनी प्रकृति और हृदय के विरुद्ध कब तक अपना शोषण करती रहोगी?"

उसने जैसे मेरी बात को सुना ही नही। वह आतंकित-सी बोली—"आप यहाँ से चले जाइए, पिताजी आने वाले है।"

"आने दो!" मैंने लापरवाही से कहा।

"नहीं-नहीं। आप जानते ही हैं कि मैं विधवा हूँ। मुझे आप लोगों से बातचीत करने का कोई अधिकार नहीं है। यह सब पाप है। काका मुझे चैन से नहीं रहने देंगे। वे मुझे बुरा-भला कहेंगे। आप चले जाइए। ईश्वर के लिए चले जाइए।" उसकी आँखें गीली हो गयीं। वर्षों से अपने पिता को लेकर उसके अन्तर में जमा हुआ आतंक उसके नयनों और चेहरे पर मूर्त हो उठा। मैं उसकी विकलता देखकर आकुल हो उठा। आवेश-जनित भावुकता से आहत-सा मैं उसके पास गया और उसके हाथ को पकड़कर बोला—"लिन्नू! अपने-आपको इस तरह मत मारो। जीवन इन व्यर्थ की परिधियों में नष्ट करने के लिए नहीं है। इच्छाएँ आत्म-हनन की आग में या धार्मिक पाप की परिभाषा में नहीं जलतीं।"

लेकिन वह मुझसे इस तरह हाथ छुड़ाकर अलग हुई जैसे मेरा हाथ जलती हुई सलाख हो। भय उसकी आँखों में दीप्त हो उठा। उसने रुकते-रुकते कहा—"आपको मुझे नहीं छूना चाहिए।"

मैंने उसकी कोई परवाह नहीं की। मैं कहता गया—"तुम्हारा जीवन यह नहीं है और न ही इस तरह कोई जीवन जिया जा सकता है। यह तो केवल आत्मवंचना है।"

"होने दीजिए, मैं एक मर्यादा और धर्म में घिरी हुई हूँ। उससे बाहर पाप ही पाप है, अनिष्ट ही अनिष्ट है।" उसने जरा तेज स्वर में कहा—"आप चले जाइए।···जाइए न!"

मैं जाने को तत्पर हुआ। तभी उसका बाप आ गया—बूढ़ा और थका-टूटा। हाथ में लकड़ी लिये। मुझे देखते ही उसका चेहरा लाल हो गया। उसने मुझे तेज, बहुत तेज दृष्टि से घूरा। मैं उसकी तेज दृष्टि से सहम गया। हठात् बाहर निकल गया। बूढ़े ने अपने स्वर में अन्तस् की सारी घृणा उँडेलते हुए कहा—"तू कमीनी अपने चेहरे को क्यों नहीं देखती? अपने चेहरे पर तुझे कुछ नहीं दिखाई देता है तो मेरे सफेद बालों की ओर देख!"

मैं वापस उसके पास गया। मुझे देखते ही उसके बाप के नथुने घोड़े की तरह फुरकने लगे। उसके मुख की झुर्रियाँ विशेष गहरी हो गयीं। थकी-हारी आँखों के गड्ढे इतने भयावह हो गये कि मैं उसकी ओर देख

भी न पाया। मुझे महसूस हुआ कि उसका दुबला-पतला बाप एक दैत्य के आकार में विशाल हो गया है। उसका अंग-अंग कठोर हो गया है। चेहरे पर निर्दयता-निर्ममता नाच उठी है और उसकी मुद्रा ऐसी है जैसे वह छिन्नू की पँखुरी-पँखुरी नोच डालेगा। पर उसने छिन्नू पर हाथ नहीं उठाया। वह केवल गन्दी गालियाँ बकता रहा। फिर वह चीखकर मुझसे बोला—"जाते क्यों नहीं ? निकल जाओ मेरे घर से !"

रात को छिन्नू का एक पत्र मिला जिसमे उसने मुझसे अनुरोध किया कि मैं उससे कदापि और किसी शर्त पर न मिलूँ। फिर मैं भी नहीं मिला। मिलने की चेष्टा भी नहीं की। सिर्फ देखता रहता था कि वह मायूस, उदास-उदास-सी घर से बाहर निकलती है और उसके पीछे छाया की तरह उसका बाप लगा रहता है। अचानक एक दिन उसको उसके बाप ने भला-बुरा कहा। वह चिल्ला रहा था—"मैं तेरा स्कूल मे जाना बन्द करा दूँगा। मुझे यह नाचना-गाना पसन्द नहीं। हरदम पड़ोसी के घर जाकर तेरा रेडियो सुनना मुझे चोखा नही लगता।"

उसने कहा—"मैं सुनूँगी।"

बाप ने उसे पीट दिया। वह कुछ नही बोली। पत्थर की बनी मार खाती रही। जब बाप मारते-मारते थक गया तब उसने फिर पूछा—"क्यों, जाएगी बिना पूछे बाहर ? सुनेगी रेडियो ?"

"हाँ।" उसने उत्तर दिया।

इस बार उसका बाप उस पर नही झल्लाया। अपने-आप पर झल्ला पड़ा। उसने अपने-आपको पीट लिया। वह उन्मत्त-सा प्रतीत हुआ। उसने अपना गला टीपते हुए कहा—"तुम अपना धर्म क्यों बिगाड़ रही हो ? तुम क्यों पाप कर रही हो ? तुम क्यों नरक में जा रही हो ? जरा अपने-आपको देखो, अपने धर्म को देखो !"

वह केवल सुनती रही।

"मैं तुम्हें पथभ्रष्ट नहीं होने दूँगा। मैं बाप हूँ तेरा। तेरे धर्म का रक्षक। जीते जी मैं यह सब नही देख सकता।"

उस दिन के बाद छिन्नू में नये विद्रोह ने जन्म लिया। वह जान-बूझकर गाती। पूजा-पाठ उसने बिल्कुल छोड़ दिया। खिड़की के खम्भे के

सहारे खड़ी होकर वह अपलक देखती रहती। एक दिन वह बाप को देखकर मेरे घर आयी। मैं उसे देखकर हक्का-बक्का हो गया। निरुद्देश्य अपने घर की दीवारों को देखने लगा। वह कुछ नहीं बोली। केवल देखती रही। मैंने उसे प्लास्टिक के खिलौने दिखाये। उन्हें देखकर उसके चेहरे पर कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। एक सूखी-सूखी-सी मुस्कान उसके अधरों पर नाच गयी।

"हम दोनों बचपन में खेलते थे न? ये खिलौने उन मिट्टी के खिलौनों से बहुत अच्छे हैं।" मैंने आर्द्र स्वर में कहा।

"हुँ।"

तभी बाहर से कर्कश स्वर सुनाई पड़ा—"छिन्नू, ओ छिन्नू, घर को छोड़कर कहाँ मारी-मारी फिर रही है?" वह लपककर बाहर चली गयी। मैं उसके अनायास आने का तब तात्पर्य नहीं समझा था। वह सिर्फ अपने बाप को चिढ़ाना चाहती थी। अब उसे बाप को पीड़ा देने में आनन्द आने लगा। बाप ने चिल्लाकर कहा—"तू घर से पाँव बाहर निकालना नहीं छोड़ेगी? क्यों तू सिर से चल रही है? जरा सोच कि यह सब पाप है, पाप!"

मैं उसके बाप के पास गया। उसे समझाया कि किसी व्यक्ति को व्यर्थ का दोष देने से वह और बिगड़ जाता है। इस पर वह मुझ पर बिगड़ पड़ा—"यह सब तेरे कारण है। न तू आता और न यह पैर निकालती। तू है तो उसी चोर बाप का बेटा! किसी के घर में आग लगाये बिना तुझे चैन थोड़े ही पड़ेगा?" वह एक जोर की साँस लेकर पुनः गर्जा—"पर मैं यह सब नहीं चलने दूँगा, नहीं चलने दूँगा!"

दूसरे दिन जब उसके घर-परिवार के कई लोग इकट्ठे होकर इस बात पर विचार कर रहे थे कि छिन्नू को कैसे रोका जाए, तब वह पड़ोसी के घर रेडियो सुन रही थी। वह वहाँ कहकहे लगा रही थी। पड़ोसिन की बेटी के गले में बाहें डालकर उन्मादिनी-सी अभिनय कर रही थी। उन्होंने क्या निर्णय किया मैं नहीं जानता, पर मैं जाते हुए चार इन्सानों को प्रश्न-भरी दृष्टि से देखता रहा। एक था उसका बड़ा मामा, दो थे उसकी बुआ के लड़के और एक था उसका छोटा मामा। उसके बाप ने मुझे बड़ी घृणा

से देखा । उसकी घृणा किसी पिशाच की घृणा से कम नहीं थी और जलती हुई आँखों से ऐसा प्रतीत हो रहा था कि वह मुझे कच्चा चबा जायगा ।

दूसरे दिन वह बाप से बिना पूछे ही स्कूल से सिनेमा देखने चली गयी। बाप उसे ११ बजे स्कूल पहुँचाने जाता था और साढे चार बजे उसे वापस लेने जाता था । पर वह मैटिनी शो मे ही स्कूल से चली गयी थी। बाप गुस्से मे भरा हुआ दरवाजे पर बैठा रहा। संयोग समझिये कि मेरे आने के ठीक पाँच मिनट बाद छिन्नू आयी। बाप उस पर भूखे बाज की तरह टूट पडा—"कहाँ गई थी कुलक्षणी ?"

"सिनेमा !"

"किसके साथ ?"

"मनोरमा बहनजी के साथ।"

उसको जरा भी विश्वास नही हुआ, क्योंकि प्रीत मिलन पहले में आया था। इसलिए वह समझ गया कि छिन्नू को मैं भड़का रहा हूँ, मैं ही उसे भ्रष्ट कर रहा हूँ, धर्मच्युत कर रहा हूँ, पाप मे ढकेल रहा हूँ। वह दाँत किटकिटाकर बोला—"तुझे मन्दिर जाने के लिए फुरसत नहीं, भगवान का नाम लेने से तेरी जीभ घिसती है, तेरे सिर मे सुइयाँ चुभने लगती हैं। तू कैसी हो रही है ? जरा ध्यान कर, इस लोक के बाद वह लोक भी है, जहाँ जलता नरक है, जहाँ पापिन को कठोर सजा मिलती है। चेत, अरी ओ पापिन चेत ! क्यों अपने जीवन को नरक बना रही है ?"

वह निरुत्तर रही। बाप बड़बड़ाता रहा। उसका छोटा भाई मामा के यहाँ ही रहता था और यदाकदा यहाँ आता था । आज वह भी आया था। बाप और बहन की बातें सुनकर उसे भी गुस्सा आ गया था। वह एकदम झल्ला गया जैसे वह समझ गया हो कि उसकी बहन भ्रष्ट है; उसकी एक बहन जो भी कर रही है वह यह सब ठीक नहीं कर रही है। छिन्नू खाना बनाने लगी। उस दिन उसके बाप ने खाना नही खाया। वह हाथ मे लकड़ी लेकर मधुमक्खी की तरह भिनभिनाता हुआ बाहर निकला, "मैं इसकी नौकरी छुड़वा दूँगा । यह दस क्लास पढकर, सौ रुपट्टी कमाकर मुझे खरीदना चाहती है। पर मैं नही बिकने वाला, मैं अधर्म नहीं देख सकता। मैं सब ठीक कर लूँगा।"

और, तीसरे दिन मुझे उसके सम्बन्धियों ने लाठियों से बुरी तरह से पीटा। मेरा सिर फट गया। मैं दस दिन अस्पताल में रहा। मेरे आठ टाँके आये। मैं बहुत कमजोर हो गया। चेहरा पीला और आँखें भीतर धँस गयी। ग्यारहवें दिन ताँगे में डालकर मेरे मामा मुझे घर ले आये। घर में आते ही छिन्नू मेरे पास आयी। मेरी मामी ने जहरभरे स्वर में कहा—"तू यहाँ क्यों आयी है? मेरे बच्चे का यह हाल तेरे कारण हुआ है। जरा शर्म कर बेहया, अपने चेहरे को देख, अपने धर्म को देख, सोच कि तू एक विधवा है, विधवा!" तभी उसका बाप झपटता हुआ आया। उसके हाथ में वही लकड़ी थी। उसने छिन्नू को पकड़ा और घसीटते हुए ले गया। उस दिन के बाद तनाव बढ़ गया। मैं खिड़की की राह देखता था कि उसकी फूफी के दोनों लड़के वही रहने लग गये हैं और वे पहरेदारी का काम कर रहे हैं। छिन्नू घायल पक्षी की तरह पिंजरे में बन्द तड़पती रहती। एक दिन वह साँझ के समय सारे बन्धन और भय को भुलाकर मेरे पास आयी। उसने मेरा सिर सहलाया। उसकी आँखों में दुर्दमनीय तृष्णाएँ तैर उठी। वह मूक-सी मेरे समीप बैठी रही। फिर एकाएक उसका हाथ मेरे सिर पर चला गया। उसके स्पर्श में मानवीय ममता थी, असीम स्नेह था जो हृदय की ऊपरी सतह पर बहुत कम तैरा करता है। मेरा मन संवेदनाओं में डूब गया और अश्रु पलक-पुलिन को चीरकर हौले-हौले बह निकले। उसने स्नेह से कहा—"भँवर! तू मुझे बहुत अच्छा लगता है। मैं तुझसे मिले बिना नहीं रह सकती।" लगा कि मेरे जीवन के हजारों तार एक-साथ झंकृत हो गये हैं। वह समाधिस्थ-सी कह रही थी—"यह पाप, धर्म और वैधव्य मुझे तुम्हारे पास आने के लिए क्यों नहीं रोक पाते? बता, क्यों नहीं रोक पाते?"

मैं कुछ कहता, इसके पहले ही उसका बाप आ गया और उसे एक भद्दी गाली देकर पीटने लगा। वह उसका हाथ पकड़कर घसीटने लगा। तभी उसका फुफेरा भाई आ गया। दोनों उसे पकड़कर ले गये और मुझे विश्वास हो गया कि उस पर मिट्टी का तेल छिड़ककर ये जल्लाद उसका काम तमाम कर देंगे। मैंने बड़ी बेचैनी से सुबह की प्रतीक्षा की। पक्षियों की चहचहाहट के साथ ही मैं छत पर गया। ताजी हवा ने मुझे

बड़ी राहत दी। खुला आसमान नीला था। मैं उसे बड़ी देर तक देखता रहा। तभी छिन्नू दिखी। उसका मुँह सूजा हुआ था। आँखों के नीचे खून का गहरा दाग था। मैं पीड़ा से भीग गया, पर वह मुझे देखते ही मुस्करा दी। वह जीवटभरी मुस्कान उसके अधरों पर बिजली की तरह चमकती रही और वह नीचे उतर गयी। मैं इस जुल्म और ज्यादतियों में भी उसके मुस्कराने पर सोचता रहा। इतनी पीड़ा में यह मुस्कान!

सूरज ऊपर चढ़ आया। उसकी किरणें अब मुझे स्पर्श करने लग गयी थी। मैं धीरे-धीरे नीचे उतरा। मामी ने मेरे लिए दूध गरम कर दिया था। मैं जैसे ही दूध पीने लगा कि छिन्नू के घर से जोर की चिल्लाहट सुनाई पड़ी। मैं दूध पीता-पीता उसकी ओर लपका। मामी ने मुझे टोका। मैं नहीं माना, पर उसके दरवाजे के पास जाकर ठिठक गया। खड़ा रहा चीख के रहस्य को समझने के लिए। थोड़ी देर में उसका फुफेरा भाई भागता हुआ बाहर निकला। वह पागलों की तरह चिल्ला रहा था—"मामाजी मर गये, मामाजी ने फाँसी लगा ली।" मैं अपने-आपको अब नही रोक सका। सीधा घर के भीतर गया। निचले तहखाने में जीतू गले मे फंदा लगाकर झूल गया था। उसकी धँसी हुई आँखें पीड़ा के मारे बाहर निकल आयी थी। चेहरा एकदम जर्द हो गया था। हाथ और पाँव ढीले पड़ गये थे। छिन्नू उसके पैरों को पकड़कर सुन्न-सी बैठी थी। सामने के साये मे मिट्टी के बने हुए नये खेल-खिलौने पड़े थे जो हमारे बचपन के प्रतीक थे, भोले प्यार के साक्षी थे। दूसरे लोग आएँ, इसके पहले ही मैं घर से बाहर निकल गया। उसी रात रवाना हो गया और आज वर्षों के बाद फिर जा रहा हूँ। मेरे स्मृति-लोक में छिन्नू का नया रूप जन्म ले रहा है। वह मुक्त है और उसने जरूर अपने मिट्टी के खेल-खिलौनो को बड़े बर्तनों में बदल लिया होगा।

उसका चूल्हा, तवा, चक्की, चम्मच आज तक इतने बड़े हो गये होंगे कि उनमें उसका ही नही, उसके सारे परिवार का भोजन बनता होगा। मैं भी उससे कहूँगा कि मैंने भी अपने खेल-खिलौनों को ऐसा ही रूप दे दिया है।

गाड़ी बीकानेर की ओर भागी जा रही है। मैं सोच रहा हूँ, समय केवल दिल-दिमाग पर ही नहीं, सभी जगहों पर परिवर्तन ला देता है।

सतह के नीचे का लावा

मैं लगातार कई बरसों से ऐसा महसूस करती हूँ कि मैं शीशे की चहार-दीवारी में बन्द हूँ और अपने-आप पर अत्याचार कर रही हूँ। यह एक सही विचार है कि जो व्यक्ति व्यर्थ के प्रतिबन्धों को तोड़ने की क्षमता नहीं रखता है, वह एक सामान्य अच्छी जिन्दगी भी नहीं जी सकता। मैं स्वयं महसूस करती हूँ कि मैं एक मौतनुमा जिन्दगी जी रही हूँ। मेरा एक-एक क्षण मेरी बड़ी दीदी के आतंक, आदेशों व प्रतिबन्धों से घिरा है। जैसे मैं उसी की इच्छा को जीने वाली हूँ।

पर आज मुझे यकायक लगा कि मुझे दीदी के विरुद्ध विद्रोह कर देना चाहिए। प्रत्यक्ष विद्रोह की मुझमें अभी भी हिम्मत नहीं है, पर परोक्ष विद्रोह करने का मुझमें साहस जुट आया है और मुझे मर्यादा, धर्म और नैतिकता की सदा दुहाई देने वाली शातमना दीदी की एक बड़ी कमजोरी हाथ लग गई है। इस कमजोरी का मैं पर्दाफाश करूँगी और आपसी झगड़े में अपने को दीदी के कठोर आवेश-शिविरों के कँटीले तारों से मुक्त कर लूँगी।

मैंने अपने कमरे की खिड़की पर लगे पर्दों को हटाया और मैं खिड़की के बीचों-बीच बैठ गई। धूप दूसरी ओर ढल गई थी। खिड़की के नीचे एक प्लाट खुला पड़ा था, जहाँ मिट्टी के कई छोटे-छोटे ढेर पड़े थे।

मुझे अक्सर अपना जीवन इन ढेरों के मानिन्द लगता है। हर साल एक ढेर बढ़ता है और मैं हर साल अपने को और बूढ़ी समझती हूँ। मुझे लगता है कि मेरे शरीर के अंगों का कसाव ढीला हो रहा है। गत तीन सालों में मैं अपने को यकायक काफी बूढ़ी महसूस करने लगी हूँ, ठीक अपनी दीदी की तरह। मेरी माँ के अधिक बच्चे होने के कारण मैं मौसी की बेटी के पास रहने लगी थी। दीदी और मेरी माँ की उम्र एक थी। उसकी माँ

अपने बाप की सबसे बड़ी बेटी थी और मेरी माँ सबसे छोटी। दीदी की बद-सूरत आकृति से भी बदसूरत है उसका हृदय। बचपन में मुझे बात-बात पर पीटती थी। इतनी बेरहमी से पीटती थी कि वह मुझे दीदी न लगकर एक डाइन अधिक लगती थी। मैं उसकी क्रोधित मुद्रा से आतंकित थी। दीदी को लेकर मुझमें एक भय बैठ गया था। सिर्फ दीदी की शादी होने के बाद कुछ अर्से जरूर मैं स्वतन्त्र रही थी।

आठ साल पहले एक साल के अन्दर ही अप्रत्याशित रूप से दीदी विधवा हो गई और उसने जयपुर में आकर एक प्राइवेट स्कूल में नौकरी कर ली। नि.सन्तान होने के कारण फिर मुझे बुला लिया गया। वही कैद। वही आतंक। मुझे बी० एड० कराया। फिर अपने ही स्कूल में टीचर बना दिया। हम दोनों साथ-साथ रहती थीं। दोनों साथ-साथ स्कूल जाती थीं, खाना बनाती थीं और सो जाती थीं।

वर्षों से न कहीं स्वतंत्रता से आना और न कहीं जाना। सिर्फ स्कूल और घर। यदाकदा सामान खरीदने के लिए बाजार की सैर। कभी कोई धार्मिक चित्र देखना—इसके अलावा कोई गतिविधि नहीं। यहाँ तक कि दीदी ने युवा पीढ़ी के लिए अपने फ्लैट के दरवाजे एक तरह से बन्द ही कर दिए थे। युवक तो युवक, दीदी ने युवतियों का भी आना आटे में नमक की तरह रखा हुआ था।

और मैं घुट-कुढ़कर रह जाती थी। माना कि मुझपर दीदी के अनेक अहसान हैं, पर अहसानों के बदले यह पीडादायक एकांत मौत से भी बद-तर है। इस तरह अकेले जीते-जीते वस्तुत. मैं कुछ दिनों में मुर्दा हो जाऊँगी। मेरी इच्छाओं का जनाज़ा निकल जाएगा। जो उत्तेजना के निर्झर मुझमें फूट रहे हैं, वे सूख जाएँगे। ओह! दीदी किस धातु की बनी है? इसके भीतर भी कोई धड़कता दिल है या फौलाद का यत्र? कभी कोई तृष्णा नहीं, कभी कोई भावुकता नहीं, कहीं कोई सवेदना नहीं। एकदम रूखापन, एकदम बजर धरती का प्रतिरूप। कभी मैं दीदी को मन-ही-मन जेलर कह देती हूँ। जिस प्रकार कोई चोर-डाकू जेलर की निगाह से बच-कर नहीं भाग सकता, उसी तरह मैं किसी भी युवक से मुस्कराकर बात-चीत नहीं कर सकती। एक बार रमेश ने मुझसे एकांत में मिलना चाहा

था। राखी का वह भाई था। राखी मेरे साथ टीचर थी। मैंने दीदी से पूछा, 'राखी के यहाँ आज मुझे जाना है। उसकी बर्थ-डे पार्टी है, जाना है।'

दीदी की आँखों में तीखापन चमक उठा। चेहरा जल्लाद वाली कठोरता से ढक गया। अत्यन्त ही नीरसता से बोली, 'राखी काफी आधुनिक है, अपना जन्म-दिन मनाती है?'

'मनाना ही चाहिए, दीदी! इस युग मे लड़की का भी कम महत्त्व नही है।'

'फिर मैं भी चलूँगी।'

मगर उस पार्टी का सारा मजा ही किरकिरा हो गया। साये की तरह दीदी मेरे पीछे लगी रही। ऐसी ऊटपटाँग चर्चाएँ करती रही कि रमेश और मैं एक बार बातचीत भी नही कर पाए। दोनो अकेले मे मिल भी नही सके। जैसे ही हम दोनों अकेले मे होने की कोशिश करते, वैसे ही दीदी कोई आलतू फालतू प्रसंग लेकर हमारे बीच में आ उपस्थित होती और *आदर्श मे लिथड़े नितान्त बासी वाक्यो का प्रयोग शुरू कर देती।* मेरी इच्छा होती कि दीदी को डाँट दूँ। उसे साफ-साफ कह दूँ कि वह सुख से नही जीती है तो कम-से-कम मुझे तो जीने दे। दीदी बिल्कुल पत्थर है। पर वह मान-मर्यादा मे जीती है। कोई अवगुण नही, कोई व्यसन नही, कोई दोष नही। अपने-आप पर अत्याचार करती है। अजीब आत्म-पीड़क है। शादी के बाद पति कही और वह खुद कही। कभी-कभी इकट्ठे होना। ऐसा होना जैसे उन दोनों मे गहरी आत्मीयता नही, एक आवश्यकता है। पति ने कई बार अपने दोस्तो से कहा था कि वह उसे अपने पास रखकर अपना मर्डर नहीं कर सकता। संयोग से एक ही साल मे दुर्घटना हो गई और दीदी विधवा हो गई। पोस्ट निकली तो यहाँ आ गई। इसके बाद रेगिस्तान के एक अकेले यात्री की तरह उसकी जीवन-यात्रा। खुद सादा खाती और सादा पहनती। मुझे भी समझाती कि तुम्हे भी सादा खाना-पहनना चाहिए। वह तो विधवा है, पर वह मुझसे ऐसी उम्मीद क्यो करती है? उस पार्टी के बाद रमेश मुझसे कट गया। अलगाव और दूरियाँ। जो रोमास के अंकुर फूटे थे, वह दीदी की खलनायिकी अन्दाज की भेंट चढ

गए।

उस दिन मैं तनाव मे घिर गई थी। मेरे चेहरे पर खिचाव था। रमेश ने कहा, 'तुम्हारी दीदी, दीदी नहीं, प्रेतनी है। शायद यह तुम्हारे संग तुम्हारी ससुराल में भी रहेगी।' और दीदी ने कहा—'रमेश कोई गम्भीर युवक नही, वह वासना से वशीभूत है। कली और भँवरे का किस्सा।' मैं अजीब पीडा से अभिभूत! एक दिन तो दीदी ने हद कर दी। मेरी सहेली प्रतिमा को अपने रूखे व्यवहार से अपमानित कर दिया। मेरे देखते-देखते मेरी सहेली चली गई और उसने कह दिया कि अब वह कभी इस घर में नही आएगी। मेरे बदन मे आग लग गई। मैंने तिलमिलाकर दीदी को कुछ कहना चाहा, पर मेरे अन्तस् का आवेश और आक्रोश गले में घुट-कर रह गया। मुझे महसूस हुआ कि दीदी का चेहरा चिर-परिचित भया-नक क्रूरता से रंग गया है। उसके चेहरे की झुर्रियाँ खाइयो की तरह गहरी हो गई हैं। उसका बदसूरत चेहरा, रोष की चिंगारियाँ, ऐसा लग रहा था कि उस पर जलजला आकर बैठ गया है। मुझमें उसकी इस मुद्रा का आतंक था। तब मुझे लगता था कि दीदी मेरा मर्डर कर देना चाहती है। तब दीदी की आँखों में खून बरसता था और दीदी, दीदी न रहकर डायन हो जाती थी। मैं खामोश होकर बुत बन जाती थी।

फिर मैं अपराधी की भाँति गरदन झुका लेती। दीदी मुझे ही नही, मेरे माँ-बाप तक को भला-बुरा कह देती थी और मुझसे नहीं बोलती थी। इतने अत्याचार और प्रतिबन्धो के बावजूद मैं उससे बँधी हुई हूँ। कौन-सी भावना बांधे हुए थी, मैं नही जानती। मैं उसका विश्लेषण नही कर सकती।

और इसके बाद मेरे अन्तर् की घृणा दिन-प्रतिदिन और गहरी होती गई, पर मैं अपने मन के विद्रोह को किसी से कह न पाई।

लेकिन एक दिन दीदी की अनुपस्थिति मे दीदी की पुरानी फाइल में मुझे एक प्रेम-पत्र मिला। अत्यन्त ही रोमांटिक प्रेम-पत्र। आकाश, तारों, चाँद, नदी-सागर, फूल और दिल। सारे शब्दों का भावुकता-भरा प्रयोग। बीच-बीच में शेरों का माधुर्य।

'तो दीदी भी किसी से प्रेम करती हैं? इस उम्र मे आज भी उसके

पत्र आते हैं ?' मैं जलन से धुआँ-धुआँ हो गई। जितनी बार प्रेम-पत्र पढ़ा मेरा गुस्सा उतनी बार बढ़ा। मैं जलन की सीमा लाँघ गई— चुड़ैल कहीं की! मुझे नैतिकता का पाठ पढ़ाती है और खुद ? छिः...! मैंने निर्णय कर लिया कि मैं दीदी के प्रतिबन्धों के घेरों को तोड़कर उससे अपनी मुक्ति का अधिकार माँगूँगी। खुद इस उम्र में इश्क फरमाएँगी और मुझे घर में बन्द करके रखेंगी! पत्र के अन्त में कितनी भावुकता से लिखा था, 'मेरी धड़कनों में तुम-ही-तुम हो, और तुम्हारी धड़कनों में बसने वाला चेतन।'...यह मुँह और मसूर की दाल!

दीदी आई। आते ही उसने हाथ-मुँह धोकर साड़ी बदली और आदेश-भरे स्वर में कहा—'खाना बना लिया ?'

'जी नहीं, मेरे सिर में दर्द है।' मैंने नाराजगी से कहा।

'लाओ, मैं बना लेती हूँ।' कहकर वह रसोईघर में चली गई। बहुत देर तक मैं यह सोचती रही कि खत दूँ या नहीं ? कहीं दीदी ने ताव में आकर कुछ अनर्थ कर लिया तो ? शर्म के मारे आत्मघात भी कर सकती है। पर मैं आत्मघात की बात से उदास नहीं हुई, बल्कि मेरे भीतर एक सुख की लहर दौड़ गई। बड़ी देर की उधेड़-बुन के पश्चात् मुझमें साहस आया। मैंने वह खत बड़ी नाटकीयता से आहिस्ता-आहिस्ता डरते-डरते सिर झुकाए हुए दीदी के समक्ष पेश कर दिया, 'यह तुम्हारा खत।'

दीदी की भृकुटियाँ तन गईं। चेहरा तनावों से घिर गया। आँखों के नीचे की भावना सहसा गहरी होने लगी।

'यह क्या है ?' उसने तिक्त स्वर में कहा और उसकी आग बरसाती दृष्टि मुझ पर जम गई।

'प्रेम...प...त्र।'

'तुम्हें कहाँ से मिला ?'

'यहीं कागजों के बीच।'

'तुम मेरे कागज सँभालती हो ?'

'नहीं तो, मैं फाइलें साफ कर रही थी।' मैंने सहमते-सहमते झूठ बोला।

'अपने को अधिक चालाक समझती हो ?' दीदी ने निचले होंठ को

अगले दाँत मे दवाकर कहा, 'मैं देख रही हूँ कि इधर तेरी जवानी मौज मार रही है। तू पंख निकाल रही है, पर तुझे तेरी दीदी में अवगुण ढूँढने की असफल चेष्टा नही करनी चाहिए। तेरी दीदी नितांत सच्चरित्र, सयमी और सादा औरत है। यह प्रेम-पत्र मेरा नहीं, मेरे ही नामवाली दसवी कक्षा की छात्रा लक्षणा का है। मेरी ही शिकायत पर उसके माँ-बाप ने उनका स्कूल छुड़वाया है। जो लड़की किशोरावस्था मे ऐसे भयानक प्रेम-पत्र लिखती है, वह क्यों नही कुपथ पर डाल दी या चली जाएगी ? मैंने उसके माँ-बाप को कह दिया है कि 'वे जल्द-से-जल्द इसकी शादी कर दें। स्कूल आना बन्द कर दें।' एक पश्चात्तापसूचक निःश्वास भरकर दीदी पुनः वोली, 'कैसा जमाना आ गया है ? लडकियां स्कूल मे पढ़ाई कम और प्रेम अधिक करती हैं। पाठ कम और शे'र अधिक याद करती हैं। छिः ! यही अनैतिकता और उच्छृंखलता उनके जीवन को बरबाद कर देती है।' दीदी ने अपने स्वर में गर्व भरकर कहा, 'एक तुम हो, जिस पर मुझे ही नही, हमारे सारे स्टाफ, मैनेजमेंट और परिचितों को नाज है। तुम्हारी गम्भीरता और शालीनता अनुकरणीय है। तुम्हारा कम बोलना और व्यर्थ का न भटकना एक आदर्श कहलाता है, वर्ना इस उम्र में आज की युवतियाँ बिना लगाम की घोड़ी की तरह हिनहिनाती हे और भागती हैं। जब लोग तुम्हारे स्वभाव, व्यवहार और चरित्र की प्रशंसा करते है तो मेरा मस्तक गौरव से ऊँचा हो जाता है।…मुझे गर्व है कि तुमने मेरी शिक्षाओं और आदर्शों का सच्चे दिल से पालन किया है।'

आग लगे आपकी शिक्षाओं को ! —मन-ही-मन मैं आहत साँपिन-सी फुत्कार उठी, परन्तु चुपचाप खड़ी रही।

'अब तो कोई अच्छा और योग्य लड़का मिल जाए तो तुम्हारी शादी कर दूँ। मुझे हर काम कायदे का पसन्द है।'

मैं तड़प उठी। इतनी स्पन्दन हुई कि मेरी आँखें सजल हो उठी। मेरी आँखों की सजलता मानो कह रही थी, 'तुम मेरी शादी नही करोगी। तुम्हें कोई भी लडका पसन्द नही आता। तुमने पसन्दगी-नापसन्दगी के चक्कर में मेरे पच्चीस वर्षों की हत्या कर दी। आधी उम्र। यौवन से लहकती-दहकती आधी उम्र। जन्तर मैं शापिन हूँ। पूर्वजन्म की शापित।

इसलिए मुझे तुम्हारी गार्जियनशिप मिली। एक नीरस औरत। तृष्णाहीन औरत। तुम्हें कोई लड़का पसन्द नहीं आएगा। तुम्हें यह जमाना भी पसन्द नहीं आएगा। पर मैं अब यह नहीं सह पाऊँगी, कतई नहीं। मैं कल या एक-दो दिनों में अलग हो जाऊँगी। अब मैं बालिग हूँ, मेरी दीदी, मैं एकदम बालिग हूँ। बहुत सहा तुम्हारा विचित्र स्वभाव, अन्याय और आतंक। हाय! कभी-कभी मुझे तुम पर दया भी आती है। इसलिए मैं करुणा-प्लावित हो जाती हूँ कि इस करोड़ों इन्सानों के मुल्क में मैं ही तुम्हारी अकेली साथी हूँ। पर क्या करूँ, मैं महसूस करती हूँ कि जो तुम मुझमें देख रही हो, वह झूठ है। मेरा मन इसके विपरीत बातों से भरा है। दीदी, अब मैं जाऊँगी—क्योंकि अब मुझे अच्छी तरह पता लग गया है कि मैं धीरे-धीरे जरूर दीदी की तरह बन जाऊँगी या बना दी जाऊँगी, पर मैं दीदी नहीं बनना चाहती।···कदापि नहीं! बंजर धरती की कोई सार्थकता नहीं।···मैं ऐसी धरती बनूँगी जो हरीतिमा कहलाती है—एकदम उर्वर और चिन्मय! मैं अपने भीतर अब एक ज्वालामुखी का अनुभव करती हूँ।

चौखट

गवरली ने ज्योंही आकाश की ओर देखा त्योंही उसकी दृष्टि एक गिद्ध पर पड़ी। गिद्ध बड़ा था और झबरेला। उसे देखते ही गवरली के शरीर में 'सी-कम्पा'-सी दौड़ गयी। क्षणिक शून्यता ने आ घेरा। एक अजानी दहशत से घिरकर वह डागले पर बनी मेंडी में घुस गयी।

थोड़ी देर के बाद उसने शीशेवाली खिड़की में से देखा। गिद्ध एक झपाटे के साथ नीचे की ओर लपका। उसने एक चूहे को दबोचा और वह अनन्त आकाश में विलीन हो गया।

गवरली को काठ मार गया। वह सोचने लगी कि सामने की छत पर यह चूहा कहाँ से आया? उसने उस छत पर तो थोड़ी देर पहले ही बुहारी लगायी थी।

अचानक उसे याद आया कि यह चूहा कभी उसके आँगन में और कभी गली में दौड़-भाग रहा था। सारे घर में यह 'रमझोल' मचाता था। खूब ऊधमी था।

अप्रत्याशित उस पर एक कुत्ता झपटा और बेचारे को मार डाला। उसी पल एक छोरे ने एक ईंट कुत्ते के मुँह पर मारी। कुत्ता भाग गया। चूहा गली में पड़ा रहा। तभी एक कौआ आया। वह उसे उठाकर डागले पर ले आया। फिर उसे गिद्ध ले गया। चूहे की दस्तान खत्म हो गयी।

वह बुत बनी बैठी रही।

चूहा उसके मानस में घूमने लगा। चूहा···चूहा···वह खुद एक ऐसा ही चूहा है।

गवरली मेंडी में से बाहर निकलकर सन्नाटों-भरी धूप में आकर बैठ गयी। धूप सुहावनी थी। माघ की सर्दी में वह अच्छी लग रही थी। चूरू शहर के चारों ओर धोरे ही धोरे पसरे हुए थे। रेत के टीलों को छू-छूकर

'डाँफर' आ रही थी।

गवरली को सहसा लगा कि उसके आसपास के लोग उसे उसी चूहे की तरह मारने जा रहे हैं।

वह पीडित हो गयी।

गवरली एक सुन्दर लड़की थी। यौवन की दहलीज पर आते-आते उसके रूप में निखार आ गया और स्वभाव में परिष्कार। वह बचपन से ही बडी भावुक थी। बहुत सपनीली थी। अपने जीवन-साथी को लेकर उसने कितने ही गढ़-कँगूरे बना लिये थे। वह मूलतः जैसलमेर की रहने-वाली थी। उसमें प्रेमदीवानी 'मूमल' की भावुकता व कोमलता कूट-कूट-कर भरी हुई थी। वह बचपन से उज्जैन में रही। शहरी सभ्यता-परिवेश को अपनाया। आधुनिकता को स्पर्श किया किन्तु बाप की गरीबी ने उसके सपनों को रौंदना शुरू कर दिया। उसके गढ-कगूरो को तोडना शुरू कर दिया।

उसका बाप केवल चार सौ रुपये कमाता था। इतने रुपयो मे जिन्दगी की बैलगाडी रिगचूँ-रिगचूँ करके चल रही थी। अभाव ही अभाव!

बाप बीमार-बीमार रहता था। माँ सूखकर काँटा हो गयी थी। ऊपर से गरवली की शादी की चिन्ता ने उसे और तोड दिया।

एक दिन उसके बाप ने उसकी माँ से कहा, 'गवरली की माँ! गवरली तो इती 'मोट्यार' दिखने लगी है कि मुझसे तो वह अब देखी नहीं जाती?'

'छोरी तो चन्द्रमा ज्यूं बढती है।'

'कुछ भी हो पर अब इसके हाथ पीले करने ही पड़ेंगे।'

'पण इसके लिए टक्के-पैसे?' माँ बोली, 'छोरी का ब्याह बातो से नही हो सकता। केवल नाक-कान और गले के गहनो के लिए भी पाँच-सात हजार रुपए चाहिए।'

'यह मैं जानता हूँ।'

'आपको यह भी जानना चाहिए कि बेटी राजा रावण के घर मे भी नही समायी।'

'जो करम में लिखा होगा, वही होगा।'

गवरली इन सम्वादो को सुन रही थी। वह अपने माँ-बाप की चिन्ता

को समझती थी। बहुत सयानी और समझदार थी। वास्तविकता को महसूसती थी। वह यह भी समझती थी कि पैसेवाले भरे हुए पेट के भूखे हैं।

उसने काफी सोच-समझकर यह निर्णय लिया कि वह शादी नहीं करेगी और नौकरी करके अपने माँ-बाप तथा छोटे भाई-बहिनों के जीवन को बनाएगी। कमर कसकर जीवन-संघर्ष करेगी। छोरी होकर छोरे की गरज पूरी करेगी। उसने अपना यह निर्णय अपने माँ-बाप को सुना दिया।

माँ-बाप पर मानो वज्रपात हो गया। उनकी आँखें फट गयीं। सोचने लगे—छोरी का माथा खराब हो गया है। इत्ती फूटरीफरी और आकर्षक छोरी जन्म-भर कुँवारी रहेगी? लडके-ज्यूँ कमाएगी?

बाप कड़ककर बोला, 'छोरी! मुंह से अणुती बात निकालते हुए सोचा कर!'

माँ उपालम्भ देती हुई बोली, 'यह लड़की कभी-न-कभी सफेद बालों में 'धूड' डलवाएगी।'

फिर लम्बी डाँट-फटकारों का सिलसिला।

गवरली को लगा कि उसके माँ-बाप बड़े ही बोदे हैं। उनमें जीवन के यथार्थ का सामना करने का साहस नहीं है।

फिर तो बात-बात पर सारे घरवाले गरवली पर 'टुणका' डालते रहते थे। अन्त में गवरली ने आत्म समर्पण कर दिया।

एक लड़का मिल गया।

चट मँगनी पट ब्याह।

गवरली को ससुराल चोखी नहीं मिली। उसका पति जुआरी और नीरस था। सास पत्थर-ज्यूँ कठोर दिलवाली। झगड़ालू। देवर उस पर हर पल बुरी नजर रखता था। एक दिन तो देवर छगन ने गवरली को दबोच ही लिया।

गवरली ने तिलमिलाकर छगन को पीट डाला। उसके विरुद्ध मोर्चा बन गया। दारू पीकर जब उसका पति आया तो उसने उसे पीट दिया।

गवरली ने अपने बाप को उज्जैन चिट्ठी लिखी। पत्र-व्यवहार का लम्बा सिलसिला! पर हर पत्र में एक ही बात—'लड़की अपने ससुराल ही चोखी लगती है। जो तेरे भाग्य में लिखा है, उसे भोगो।'

उसे लगा कि उसके लिए सब मर गये हैं। फिर तो निरन्तर गवरली को सताया जाने लगा। वह अदृश्य जख्मों से भर गयी।

आज चूहे की हालत देखकर उसे अपनी हालत याद हो आयी। वह भी तो अपने घर के शिकारी कुत्तों, कौओं व गिद्धों से घिरी हुई है, कोंची जा रही है, मृत्यु के नजदीक जा रही है।

तीखी ठंडी हवा ने उसे चौंकाया। अपने अवसादभरे अतीत व वर्तमान से वह कट-सी गयी। उसने नजर उठाकर देखा—उसका वही लफंगा देवर खड़ा था। उसे वासनालिप्त निगाहों से देख रहा था। लग रहा था जैसे वह भूखा आदमी उसे खा जाएगा।

गवरली सावधान हो गयी।

देवर बोला, 'मेरी बात मान ले। मैं तुम्हारे सारे दुख दूर कर दूंगा।'

'तू अपना काला मुंह लेकर चला जा, वरना मैं तेरा थोबड़ा तोड डालूंगी।' वह बिफर पड़ी।

देवर ने उसका हाथ पकड़ा। गवरली ने एक झटके से हाथ छुड़ाकर चाँटा मार दिया। देवर लाल-पीला होकर चला गया।

सन्नाटा पसर गया।

संयोग की बात है।

एक घायल कबूतर उसकी गोद मे आ गिरा। वह भयभीत हो गयी। उसने कबूतर को सँभालकर देखा तो एक क्रुद्ध बाज तूफानी गति से उसके चारों ओर चक्कर मार रहा है। गवरली कभी कबूतर और कभी बाज को देखने लगी।

उसके हृदय मे आन्दोलन-सा मचा। वह बार-बार कबूतर और कभी बाज को देख रही थी। फिर वह कबूतर को अपने आँचल मे छिपाकर घर से बाहर निकल गयी। उसने सोचा—उसे जीने के लिए इस चौखट को लाँघना ही होगा।

उसके चेहरे पर धूप का एक नया टुकड़ा था।

प्यास के घेरे

उसने सोचा वह अब औरत न रहकर एक इमारत बन गयी है। पत्थर, ईंट, चूना और सीमेंट की एक मजबूत इमारत। भावहीन और निष्प्राण। न हँस सकती है और न रो सकती है। सिर्फ खड़ी रह सकती है—एक चौराहे के बीच।

चन्द्रिमा व्यथित-सी विचारों में उलझी अपने कमरे में अपने पलँग से चिपकी पड़ी थी। अभी से नहीं, सुबह से उसने बीमार होने का बहाना बना लिया था। जब सूरज उसकी साँवली देह का स्पर्श करके उसकी खिड़की के ऊपर आकर टँगा, तब उसकी बड़ी लड़की तोष अपने स्काई-स्क्रैपर जूड़े को अपनी कोमल हथेलियों से व्यवस्थित करती हुई आयी। उसके होंठों की लिपस्टिक फीकी पड़ गयी थी।...चन्द्रिमा ने उसके अधरों को तेज निगाह से देखा। एक जलन-सी उसके मन में दौड़ी, शायद इसके अधरों को किसी के होंठों ने दबोचा होगा...छिः-छिः !

'ममी, आज नाश्ता नहीं बनेगा ?' तोष ने अपने हाथों को एक अलस-भरी मादकता में डूबकर झुलाया और फिर उन्हें आपस में उलझा लिया।

'नहीं, आज मेरी तबीयत खराब है।'

और वह तबीयत न खराब होते हुए भी पलँग पर पड़ी रही या उसने मन-ही-मन पलँग से कहा कि उसे चिपकाए रखे।

पलँग ने उसे सचमुच चिपकाए रखा। ग्यारह सन्तानों के बाद भी चन्द्रिमा में एक अजीब जिजीविषा है—उत्कट और अदम्य लालसाओं से भरी जीने की इच्छा; अपने-आपको एक रोमांटिक मूड में रखने की चाहना। लेकिन अपनी दोनों बड़ी लड़कियों तोष और सन्तोष की ओर देखकर वह न जाने क्यों अपने-आपको इमारत समझने लगती है ? इसका कारण उसे ढूँढे नहीं मिलता है। उसे लगता है—वह इमारत है, उसका

घर, आँगन, चौराहा, अलग-अलग रास्ते, ये बच्चे हैं। सभी इसी से प्रसूत और निकले हुए। रात को सभी उसके आस-पास केन्द्रित हो जाते हैं, उस-मे आकर मिल जाते हैं···लोप हो जाते हैं। उसे लगता है कि उसका जीवन जीवन न होकर एक इमारत हो गया है।

कमरे मे एकान्त बैठ गया है। धीरे-धीरे उसे और गहरा एकान्त घेरता गया। वह पडी रही। उसकी बगल मे अतीत आकर सो गया। सोता-सोता बदमाशी करने लगा। वह दूसरी तरफ पीठ किये नाराज-सी पडी रही। सोलह वर्ष से लेकर आज तक उसने एक ही काम किया, यानी ११ बच्चों को जन्म दिया। निरन्तर—अनवरत, पेट को हल्का करना और पेट को भारी करना। छि.···वह अब उन पीडादायक क्षणो की हत्या कर देगी। अब उसने बी० ए० कर लिया है। फिर एम० ए० और फिर··· 'अरे, अभी मेरी उम्र ही क्या ? अमेरिका मे ३५-३६ के लोग तो बिलकुल यंग कहलाते हैं। एकदम जवान।'·· और वह सचमुच क्रुद्ध हो उठी। वह अपने विगत विवाहित १६ वर्षों की निर्ममतापूर्वक हत्या कर देगी।··· वह अनुभूति की तीव्र उत्तेजना मे डूबती गयी····'बेईमान कहीं का, पीछा छोडता ही नही। हर घड़ी लिपटा रहता है मेरे चारो ओर। यह अतीत··· दुःखो और घुटन से भरा अतीत। मैं इसे अस्तित्वहीन करके ही छोड़ूंगी।' पर उसे लगा कि उसकी बगल मे लेटा हुआ अतीत उसके जिस्म पर अपना हाथ फेर रहा है। कितना खुरदरा स्पर्श है ! छि: ! उसे इस स्पर्श से घृणा है। एक अरुचि की भावना उत्पन्न हो गयी उसमे। यह अतीत और उसका खुरदरा हथेली-स्पर्श।

फिर उसे लगा कि अतीत उसे अपनी बाहों मे दबोच रहा है। उसके नाखून तेज हैं। उसकी हथेली का खुरदरापन बहुत ही तीखा हो गया है। हथेलियों मे कैक्टस उग आये हैं। उसने उसके हाथ को पकडकर जोर से फेंक दिया। हाथ फिर उसकी बाँह पर आ गया। उँगलियाँ सर्प-दंशन-सी दौड़ती हुई उसकी सूखी छाती पर रुक गईं।

उसने गुस्से से तीव्र स्वर मे कहा, 'मुझसे दूर रहो, मेरी तबीयत आज खराब है। आज मैं बहुत उदास हूँ।'···वह निर्लज्जताभरी हँसी हँस पड़ा। उसके चेहरे पर साँप-ही-साँप रेंग रहे थे। होठों पर वह जीभ इस

तरह फिरा रहा था जैसे उसके होंठ सूख रहे हों ···उसने कहा, 'एकान्त। देखो, आज कितना एकान्त है ! रविवार तो व्यर्थ है मेरे लिए। सब बच्चे घर में रहते है। क्यों नहीं, तुम अपनी साप्ताहिक छुट्टी शनिवार की कर लेती ?'···चेहरा और साँपो से भर गया।

इमारत ढहती गयी। चारों ओर से वर्षा ही वर्षा। चन्द्रिमा को लगा कि वह भीग गयी है।···एकदम गीली, पानी से तर हो गयी है। फिर वह उदास हो गयी। कहीं नया बच्चा ! नहीं-नहीं···ऐसा नहीं होगा, नहीं होगा अब ! किसी हालत मे नहीं होगा !

चन्द्रिमा पड़ी रही। उसने देखा कि उस इमारत का स्वामी कुछ वायदे करके चला गया। उसने कुछ नयी सजावट का सामान लाने को कहा। कुछ नये पर्दे भी। साथ ही उसने यह वायदा भी किया कि अब कोई नया रास्ता नहीं होगा।

पाँच बज गये है, बन्द रास्ते खुल गये। आँगन में शोर-गुल होने लगा। छोटी बेबी 'रोटी दो, रोटी दो' कहकर मिमियाने लगी। उसकी पतली और तेज आवाज़ आंगन मे ध्वनित होकर चन्द्रिमा के कर्ण-कुहरों में आकर ठहर गयी। बेबी की आवाज को कोई नहीं सुन रहा था। आखिर वह उठी और उसने नम्बर छः को डाँटा—'क्या बहरी हो गयी है ? तुमसे छोटी बेबी को रोटी नहीं दी जाती ?'

नम्बर छः की माँ का बिना वजह डाँटना अच्छा नहीं लगा। वह चिढ़ती हुई बोली—'मैं क्या करूँ ? रोटी है ही नहीं। आप तो मुझे खामखा डाटती हैं।'

'रोटी नहीं है' यह सुनकर बेबी और जोर-जोर से रोने लगी।

अपने टूटे हुए मन और तीव्र अनिच्छा के बावजूद भी चन्द्रिमा को उठकर चूल्हा जलाना पड़ा। धुआँ क्या उठा, उसे लगा कि वह उसमें घिर गयी है, उसका दम घुट रहा है, एक-एक साँस दूभर हो गयी है। उसे महसूस होता है कि अब ये सब असह्य हैं। वह खरीदी गुलाम की तरह रोटियाँ सेकती रही है। तभी उसकी दोनों बड़ी बेटियाँ आ गयी। तंग कपड़ों में उनके दुबले-पतले जिस्म बीमारों से लग रहे थे। बेढंगी चाल। फिर भी जवानी जवानी होती है। शृंगार-प्रसाधनों के अलग

अजब खेल होते हैं। दोनों जनियाँ नखरे से जिस्म मरोड़ती, आँखों में थकान उतारती हुई आयी। अपने पर्सों को मैली चादर बिछे पलँग पर फेंकती हुई नम्बर एक बोली, 'थक जाते हैं। हालाँकि स्कूल नजदीक है पर लड़कियों को पढ़ाना, बहुत ही टेढ़ा वर्क है। फिर आजकल की लड़कियाँ पढ़ती हैं कम, और फैशन करती हैं ज्यादा। कितना पाउडर लगाती हैं ? वन्दना तो होंठों पर लिपस्टिक लगाये बिना आती ही नहीं।'

चन्द्रिमा ने एक बार अपनी दोनों जवान छोकरियों की ओर देखा। उसे गुस्सा आ गया कि वह इसी समय इन दोनों पर ताने कसे। कहे—'तुम क्या करती हो ? कई घण्टे तो तुम अपने भद्दे मुखड़ों को सँवारने में लगा देती हो।' चन्द्रिमा एक अजीब विकर्षण से भर उठी—'इन लड़कियों ने ही उसके यौवन को चुरा लिया है।'

दो नम्बर ने आकर कहा, 'माँ भूख लगी है। हमें भी परांठा बना दो।' हालाँकि चन्द्रिमा यह कहना चाहती थी कि खुद क्यों नहीं करती ? हाथ-पाँव टूटे हुए हैं ? पर उसकी जबान तालू से सट गयी। उसके विवेक ने उसे डरा दिया—'पगली ! दोनों छोरियाँ कमाती हैं, दो सौ, तीन सौ रुपये लाती हैं। तभी घर का खर्च चलता है।···पति तो निकम्मा स्वामी है। सिर्फ इमारत में नये रास्ते निकालना जानता है।' वह अपने आवेग को दबाकर बैठ गयी। उसने परांठे बनाकर दे दिये। दोनों लड़कियाँ खाने लगीं। धीरे-धीरे चौराहे पर सारे रास्ते निकल आये। भीड़ मच गयी। चन्द्रिमा को लगा कि वह एक होटल का रसोइया है—उसका काम है—आग को तेज रखना, रोटियाँ सेंकना।

दिनेश आ गया। उसको देखते ही दोनों बड़ी लड़कियों की आँखों में एक शोला-सा भड़क उठा। बड़ी उत्साह से बोली—'भाई साहब ! आज आपने सिनेमा का वादा किया था। चलिए।'

भाई साहब की स्थिति दीनता से ढक गयी। दो सौ रुपल्ली में से हर मास बीस-तीस छोरियाँ सिनेमा-मिठाई का खींच लेती हैं। शेष बड़े परिवार के भरण-पोषण में चला जाता और उनके पिछले तकाजे ज्यों-के-त्यों बने रहते हैं। पर औरत···सच औरत वह मछली है जिसके बदन पर काँटे उगे हुए हैं, चुभते हैं, पर उसका सम्मोह नहीं छूटता। भाई साहब विहँस-

कर बोले, 'चलो, अभी चलते है। मैं तो आया ही इसलिए हूँ। आप तैयार हों।'''मम्मी, आप भी चलेंगी क्या?'

नम्बर दो कौर निगलती हुई बोली--'मम्मी अपने साथ नहीं चल सकती हैं। अभी इन्हें सारी रोटियाँ बनानी है।'''पिताजी भी नहीं आये है।'

चन्द्रिमा की भौंहे तन गयी। उसने रूखे स्वर में कहा—'मैं नहीं जाऊँगी। आप ही लोग चले जायें।'

भाई साहब समझ गये कि मम्मी नाराज हैं लेकिन वे कुछ बोले नहीं। छोरियाँ अधभरे पेट को लेकर उठ गयी। बोलीं— 'हम जा रहे है मम्मी!'''और उसके उत्तर को सुने बिना ही वे अपना मेकअप करने लगी। भाई साहब भूखी दृष्टि से उन्हें देख रहे थे। चन्द्रिमा का मन अब और व्यर्थता से भर आया। उसे लगा कि ये सब उससे जलती हैं। दिनेश को वह इस घर मे लायी थी। पहले दिनेश हर घड़ी उसके पास बैठा रहता था, उसके बिना कही नहीं जाता था, पर आज'''पर आज जैसे चन्द्रिमा के दिनेश को उसकी इन छोरियो ने छीन लिया है और उसे घोर एकान्त दे दिया है—एक पीड़ाभरा एकान्त! उसकी जीभ पर एक कसैले-पन का स्वाद था गया। और याद आ गया—बड़ी लड़की के होठों का उतरा हुआ लिपस्टिक।

वह नितान्त अशक्त हो उठी। उसने रोटियाँ बनायीं। उस बीच उसे अपनी सन्तान मे किसी तरह की कोई रुचि नही लगी। वह आत्मलीन-सी अपनी लडकियों मे बोली—'खाना खाकर रसोईघर साफ कर लेना। मेरी तबीयत खराब है। जाकर सोती हूँ।'

चन्द्रिमा आकर पड़ गयी। सोचती रही। लाख रोकने के बाद भी वह सोच बैठी—उसके जीवन की क्या सार्थकता है?''''''कोई चार्म नही, कोई एन्टरटेनमेंट नही। एक दिनेश था, इसे भी छोरियाँ हड़प गयी। '''ये छोरियाँ कितनी रद्दी हैं?'''उसने उनसे अपने रूप की तुलना की। उसे लगा कि इतने बच्चों के जन्म के बाद भी वह उन लडकियों से अब भी अधिक सुन्दर लगती है। अनायास वह उठी और उसने दर्पण में अपने अंग-अंग को उतारा। फिर उसने अपनी दोनों लड़कियों के अंगों का स्मरण किया। उसे लगा कि उसके अंग-सौष्ठव के समक्ष वे बहुत मुर्दा

और अनाकर्षक लगती हैं। पर जवान जरूर हैं और जवान जवान होती हैं। दिनेश क्या, हर आने वाला उसकी आड़ में इन छोकरियों को हड़प जाने की चेष्टा करता है। वह अत्यन्त व्यथित हो गयी। बाद में उसने निर्णय किया कि वह कल से दिनेश को घर मे आना मना कर देगी। जरूर करेगी क्योंकि उसकी अपनी भी कोई इज्जत है। कही कुकर्म हो गया तो ?…वह छोकरियों को भी डाँटेगी…उन्हे आगाह करेगी कि जिन्दगी बड़ी विकट है।…और उसने देखा इमारत हिल रही है बहुत जोर से, क्योंकि उसके इन सब इरादों मे बहुत खोखलापन था।

बिल्ली मर गयी

बिल्ली मर गयी।

हाँ, मनीषा की बिल्ली मर गयी।

अचानक बिल्ली के मरने ने मनीषा को झकझोर दिया और उसका अस्तित्व हिल गया। बिल्ली आखिर अचानक और अप्रत्याशित क्यो मर गयी? वह तो बीमार भी नही थी। रात को दूध पिया था। उसके साथ खेली थी। नाची-कूदी थी। फिर अचानक वह मर क्यो गयी? उसकी *मौत बहुत ही सन्नाटों-भरी थी।* एकदम *अजान* इस *मृत्यु* ने उसको धीरे-धीरे सालना शुरू कर दिया। उसके रोम-रोम मे अव्यक्त पीड़ा होने लगी। कभी-कभी उसे दंश-पीडा का अहसास होता था।

उसे रह-रहकर लगता था कि उसकी बिल्ली का जीवन अकारथ चला गया। ठीक उसकी तरह चुप-चुप। हालांकि एक बार वह अपनी बिल्ली के लिए एक बिल्ला भी लायी थी, पर उसने देखा कि उस बिल्ले के साथ दो-चार बच्चे हैं तो मनीषा की बिल्ली नाराज हो गयी और विरोधस्वरूप वह बहुत ही चीखी-चिल्लायी और अन्त में भाग खड़ी हुई। वह तब तक वापस नहीं आयी जब तक उसने बिल्ले को घर से भगा न दिया।

मगर मनीषा अपनी बिल्ली की तरह इस घर में आकर न तो भाग सकी और न विरोध कर सकी। मनीषा मध्यमवर्गीय एक भावुक किस्म की लडकी थी। उसके बाप का कभी छोटा-सा बिजनिस था जो मनीषा के बी॰ ए॰ करते-करते खत्म हो गया। उसका बाप बेकार हो गया। उसकी माँ का उसके बाप पर सीधा आरोप था कि वह इधर शराब व जुए का शौकीन हो गया है और उसने सारा रुपया इन दो लतो मे उड़ा डाला। लेकिन उसके बाप की आवाज में सफाई थी कि यह सब उसकी फूटी

किस्मत के कारण हुआ। परन्तु यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता था कि यह सब मनीषा और उसकी बहिनों के हक में बहुत ही बुरा हुआ। स्वयं मनीषा को लगने लगा कि उसका और उसकी बहिनों का भविष्य अँधेरी गुफाओं में चला गया है।

और जब विवाह की बात चली तो मनीषा ने अपने घर की सारी स्थिति का जायजा लेकर एक अच्छी कर्त्तव्यनिष्ठ लड़की की तरह कहा, 'मैं अब शादी नहीं करूँगी। मैं नौकरी करके इस घर का पालन-पोषण करूँगी।' इस पर माँ ने हगामा मचा दिया और बाप लाचारी के आँसू बहाने लगा।

और तो और, उसकी अभावग्रस्त बोदे विचार वाली बहिनें भी उसे इस तरह घूरने लगी जैसे उसकी बहिन कोई अजूबा हो गयी है। एक ने कहा, 'यह हम सब की जिन्दगी तबाह करना चाहती है। यदि यह शादी नहीं करेगी, तो हमारी भी नहीं होगी।'

लाचार हो उसे अनिच्छा से विवाह के लिए स्वीकृति देनी पड़ी, क्योंकि वह घरवालों की उपेक्षा व अजनबी निगाहों को ज्यादा दिन सहन नहीं कर सकी। उसे लगा कि हर निगाह उसे कुरेद रही है। उसे स्वार्थी व नीच समझ रही है। आखिर शादी की तारीख तय हो गयी।

उसका विवाह एक व्यापारी के साथ तय हुआ था, जो उससे दस पन्द्रह साल बड़ा था। उसने कोई एतराज नहीं किया, हालांकि वह बहुत ही भावुक व स्वप्नदर्शी युवती थी। उसे अच्छे सपने देखने की आदत थी पर वह मूक गाय की तरह शादी की हर बात के लिए हामी भरती रही। एक तरह से उसकी वही स्थिति और रवैया था जो एक अनपढ़ और दब्बू लड़की का होता है। शायद उसने उस मार्मिक व कटु सत्य को जान लिया था कि नारी की अन्तिम नियति ही त्याग और सहिष्णुता में है, पति के घर में है।

लेकिन शादी के समय पहली बार मनीषा के हृदय का विद्रोह फूटा। जब दुल्हन बनने पर उसकी एक बहिन ने उत्सुकतावश या व्यंग से कहा—"अरी मनीषा दीदी! तुम्हारे तो दो-दो लड़के भी हैं।"

"क्या?" वह अवाक् रह गयी।

"देखो मनीषा, मैंने उन लड़कों को देखा नहीं है, वैसे सुना है। और

सारे लोग कह रहे हैं।"

मनीषा की आत्मा पीड़ा से कराह उठी। उसने तुरन्त ही अपनी माँ को बुलाया। माँ ने आते ही प्रसन्न मुद्रा में कहा, 'बेटी! कितनी भाग्यशालिनी है। तेरा पति तो बहुत पैसेवाला है। उसकी अपनी कार है।'

'माँ! क्या वह दो बच्चों का···।' उसने मुख्य सवाल को कुरेदा।

'पगली कहीं की! दिल छोटा न कर। दूल्हा बहुत अच्छा है। तू नहीं जानती कि तेरे बाप के सीने से आज कितना बड़ा पत्थर उतरा है।'

'दुल्हन को लाओ······दुल्हन को लाओ!' विभिन्न आवाजें आयीं।

मनीषा का विद्रोह भड़क नहीं पाया। वह भीतर-ही-भीतर कसमसाकर रह गयी, पर उसके कानों में माँ का यह वाक्य गूँजता रहा—तेरे बाप के सीने का पत्थर······पत्थर······पत्थर!

विवाह हो गया।

उसने देखा कि उसके सुहागरात की तैयारियाँ बड़े जोर-शोर से हुई हैं। उसका पति सामान्य कद-काठी का आदमी है। कोई खास व्यक्तित्व भी नहीं है उसका।

उसका कमरा फूलों की महक से भरा-भरा था। पलँग को भी गुलाब के फूलों से सजाया गया था। उसकी ननद ने उसे जबरदस्ती कमरे में ढकेल दिया। एक खिलखिलाहट गूँजी थी तब। वह भी लाज से भर-भर आयी थी। घूँघट निकालकर सोचने लगी कि अभी उसका दूल्हा आकर बड़े ही नाजुकपन से उसका घूँघट हटायेगा और···वह कुछ पलों के लिए केवल दुल्हन बनकर रह गयी। वह पुलक से भर-भर आयी।

तभी दूल्हा आ गया। अकेला नहीं, अपने दोनों बच्चों के साथ।

उसके चेहरे पर दूल्हेवाली मुस्कान, अधीरता और आकुलता नहीं थी। वह काफी गम्भीर लग रहा था। उसने आते ही कहा, 'देखो रामू-श्यामू, यह कौन है?'

'हम नहीं जानते।' दोनों बच्चे एक-साथ बोले।

'अरे बेटी, यह तुम्हारी नयी मम्मी है।'

'मम्मी···?' रामू चौंका।

'हाँ···हाँ !' मनीषा का पति सरोज बोला। वह जरा मनीषा के नजदीक आया और बोला, 'अपने इन दोनों बच्चों को प्यार करो।'

दोनों बच्चे मम्मी-मम्मी कहने लगे। नोंचने लगे।

मनीषा का मन तड़प उठा। उसे लगा कि उसकी कुंवारी भावनाओं पर माँ का बोझिलपन लादा जा रहा है। क्या उसका पति इसके लिये आज की रात तक भी सब्र नहीं कर सकता? सारी सुहागरात का आनन्द समाप्त कर दिया। वह बहुत-कुछ कहना चाहती थी, पर वह बोल नहीं पाई। चुपचाप बैठी रही।

सरोज ने फिर कहा, 'इन बच्चों को गले से लगा लो। ये माँ के लिए तरस रहे हैं।'

उसने पति की ओर देखा। देखते-देखते वह रो पड़ी। अपनी कोमल भावनाओं और सुनहरे सपनों पर उसे एक बुलडोजर चलता हुआ लगा। उसने महसूस किया कि उसकी कुंवारी इच्छाओं पर बिना माँ बने ही ममता की मोहरें लगायी जा रही हैं। उसके चहकने-महकने के पहले ही उस पर नीरस दायित्व को लादा जा रहा है।

'तुम्हें कोई दुख है?' सरोज ने बुजुर्ग की तरह पूछा, 'मैं तुम्हें सोने-चाँदी से लाद दूंगा।'

वह तड़पकर बोली, 'नहीं-नहीं, मुझे कुछ भी नहीं चाहिये। आज मेरी सुहागरात है न?'

'मम्मी-मम्मी!' रामू चहका।

'मम्मी-मम्मी!' श्यामू चहका।

'गले लगा लो न?' सरोज ने विनती की।

मनीषा ने आर्द्र आँखों से देखा जैसे वह याचना कर रही हो कि आज तो मेरी सुहागरात है—आज तो आप मुझे गले लगाइए···मेरे शरीर के गुलाब खिलाइए।

पर वह पति के निरन्तर अनुरोध को टाल नहीं सकी। उसने दोनों बच्चों को गले लगा लिया और बच्चे ममता व अपनेपन में डूबकर उसके पास ही सो गये।

सुहागरात सुहागरात न बन सकी।

और चन्द दिनों के बाद यही जीवन की तलाश में असफल होकर उसका मन उद्विग्न हो गया। उसके और उसके पति के बीच कटुता और खिंचाव जन्म गया। जब उसका मन घरवालों से नहीं बहला तो वह एक बिल्ली ले आयी। पर बिल्ली भी उसकी तरह ही जीते-जीते अचानक आज रात मर गयी।

बिल्ली अचानक मरी थी। तो क्या वह भी एक दिन अचानक··· नहीं-नहीं, वह लादे हुए जीवन को उतार फेंकेगी।

तभी राम् श्याम् ने आकर कहा, 'मम्मी ! अपनी बिल्ली को घसीटता हुआ भगी ले गया।'

वह तड़प उठी। उसने अपने सौतेले बच्चों को गले से लगा लिया। वह दुःस्वप्नों से घिरती गयी। फिर उसने बच्चों को भगा दिया और अनायास ही उसने खिड़की का शीशा तोड़ दिया।

उसका पति घबराया हुआ आया। वह तेज स्वर में बोला, 'यह आवाज कैसी हुई ? यह शीशा किसने तोड़ा ?'

वह शान्त स्वर में बोली, 'मेरी प्रेतात्मा ने···।'

'क्या ?'

'हाँ···मैं बिल्ली की मौत नहीं मरना चाहती।' और तभी—खिड़की के पास से एक हवाई जहाज शोर मचाता हुआ गुजरा। दोनों स्तब्ध हो गए।

सूखे तालाब की बेल

रात गहरी तवे-सी काली है। तारे तवे पर अग्निफूल-से चमक रहे हैं। मैं अपनी छत पर आती हूँ। खामोशी में सोई गली को देखने लगती हूँ। अँधेरी रात में गली अन्धकार की पूतना की तरह लगती है।

मेरे घर के बिल्कुल सामने—एक सूखा तालाब। उसके एक कोने पर लेम्प पोस्ट ऊँघ रहा है। हवा का तेज़ झोंका उसकी ऊँघ को तोड देता है और रोशनी के कई वृत्त जोर-जोर से काँपने लगते हैं। उन काँपते वृत्तों को मैं देख रही हूँ कि उस तालाब में न जाने कितनी दरारें और हैं। आस-पास की नालियों के पानी से उसमें एक बेल उग आई है। किसने बीज डाला, मैं नहीं जानती हूँ पर यह बेल इतनी गहन-गम्भीर होकर फैली है कि तालाब का एक हिस्सा हरा-भरा व आकर्षक बन गया है। उस बेल के हज़ारों हाथ हैं जो दूर-दूर तक फैले हुए है और उस पर सदा नए फूल खिलते हैं।

साल में एक बार पतझड़ आता है तब बेल सूख जाती है, उसके पत्ते झर जाते हैं। फिर बसन्त आता है, तब बेल फिर नया रूप-रंग लेकर उमंगों की चुनरी ओढकर यौवनोन्मत्त हो जाती है, उसमें नए फूल खिल आते है। पर मुझे लगता है कि मेरे जीवन में हमेशा पतझड़ रहा है, मैं हमेशा मुरझाई रहती हूँ।

रात अपग इन्सान की तरह घिसट-घिसटकर सरक रही है। छत की दीवारें इतनी मुलायम और चिकनी हैं कि कभी-कभी उन पर हाथ फेरते हुए मुझे विषैले साँप की दुष्कल्पना हो जाती है। मैं सहम जाती हूँ, डर जाती हूँ और मेरे सारे बदन में साँप डसने की पीडाएँ उठ आती है। मैं पसीना-पसीना हो जाती हूँ, फिर अपनी ही बेवकूफी पर हँस पड़ती हूँ—कोरे भ्रम की घाटियों में भटक गई हूँ मैं। कहाँ साँप? यह तो

दीवार है, एकदम चिकनी, एकदम मुलायम केले के पेड़ की तरह, मेरी अपनी जाँघ की तरह''' न जाने क्यों, एक पागल जैसी सुखानुभूति होती है।

एक हाथ मेरी जाँघ पर फिर रहा है। मैं घबराकर उसे हटा देती हूँ। यह खुरदरा हाथ, उसकी अनगढ़ पत्थर-सी हथेली की चमड़ी, मुझे मेरे प्रेमी की हथेली के अस्तित्व को बता देती है।'''और हठात् मेरा ध्यान मेरे दस वर्ष के पुराने प्रेमी मन्मथ की ओर चला जाता है। वह आज भी मुझे उतना ही प्यार करता है।

नजदीक की खाट पर मेरा पति सोया हुआ है। अँधेरे में उसका अस्तित्व मेरे मन पर विभिन्न प्रभाव व प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न कर रहा है। वह जोर की जम्हाई लेकर पानी माँगता है। मैं उसे गिलास भरकर देती हूँ। वह जैसे ही गिलास लेता है, वैसे ही फिर जम्हाई आती है। साँस के साथ शराब की भयानक बदबू मेरे आसपास फैल जाती है। मुझे घिन आती है। मेरे रोम-रोम में घृणा के काँटे उग आते हैं। वह पानी पीकर सो जाता है। उसके पसीने मे भी लहसुन की बास आ रही है। एक असह्य बदबू, जो मुझे कतई पसन्द नही है।

वह थोडी ही देर बाद फिर जागता है। चुटकी बजाते हुए जम्हाई लेता है। करवट बदलता है। उसकी दृष्टि मेरी ओर है। मुझे अपने पास आने का संकेत करता है। क्षणभर में मैं पतिव्रता की तरह उसकी बाहों मे होती हूँ। वह सन्तुष्ट होकर वापस सो जाता है। सोचती हूँ, मेरे शरीर मे उसके प्रति जो अभी घृणा के हजारों काँटे यन्त्रवत् उग आए थे, ऐसी स्थिति मे क्या वे चुभे नही? तब मैं दर्द, एक अकथनीय पीडा, एक अमानुषिक यन्त्रणा से कराह उठती हूँ। मुझे लगता है, जो काँटे थोड़ी देर पूर्व मेरे शरीर में उभरे थे, वे मुझे ही चुभने लगे है। तब मैं टूटकर पड़ जाती हूँ, खाट पर। एक युग से यही सब-कुछ चलता आया है।

रात अँधेरी है। यह आकाश, यह पृथ्वी, यह मेरा घर, यह मेरा तन और यहाँ कि तक मेरा मन भी अँधेरे मे डूबा हुआ है।

एक अजीब-सी अनुभूति होती है। थमी हवा एकाएक द्रुतगति से चलने लगती है, और मैं उस तीव्र हवा और घोर अँधेरे में भी देखती हूँ

कि वह बेल अपने निर्दिष्ट स्थान से सरकती हुई मेरे पास आने लगती है। मैं घबरा जाती हूँ—यह कैसा करिश्मा ? मैं पसीना-पसीना हो जाती हूँ। भयाक्रान्ता-सी भागने की चेष्टा करती हूँ, और बेल के हजारों हाथ मुझे अपने मे समेट लेते हैं। मैं जैसे-जैसे छूटने की चेष्टा करती हूँ, वैसे-वैसे उसकी लपेट मे और जकड़ती जाती हूँ। उसके पत्तों पर कैक्टस के पत्तों की तरह काँटे उभरकर मुझे चुभने लगते हैं। एक पीड़ा मे मैं तिलमिलाती हूँ, पर मेरे त्राण का कोई उपाय नहीं होता। आखिर मैं रोने लगती हूँ, मेरा करुण विलाप हृदय-विदारक होता है। आँगन मे कोई बर्तन गिरता है जिससे मैं इस दुष्कल्पना से मुक्त होती हूँ। यह निराधार दुष्कल्पना क्यों ? फिर तुरन्त मुझे लगता है, मैं कोई चोर हूँ और मेरे आसपास हजारों सिपाही हैं।···मैं निरुपाय-निराश-सी फिर दीवार से चिपक जाती हूँ। सहमते-सहमते निश्चय करती हूँ कि मैं इस बेल को उखाड़ डालूँगी। यह मेरे मन मे न जाने कैसी-कैसी बातें पैदा करती है जिनसे मैं घड़ी-घड़ी अशान्त हो जाती हूँ।

गली मे पाँव की कोई आहट नहीं होती है। मैं व्यग्र हूँ। क्या बात है ? आज मन्मथ नहीं आएगा ? आशंकाओं मे मैं घिर जाती हूँ। कुछ भयभीत भी हो जाती हूँ। पर मेरे मन मे मन्मथ की याद के साथ एक हृदयग्राही गन्ध उठती है,। मेरे पीड़ित और नरक हुए जीवन मे वह खुशबुओं का जाल-सा बुन जाता है। सुख ही सुख ! गन्ध ही गन्ध ! और लगता है—दस वर्ष से सम्पूर्ण रूप मे आसक्त मेरा प्रेमी मन्मथ जरूर आएगा। सच, यदि वह न होता तो मैं इस ऊब, नीरस और पीड़ित जीवन से तड़प-तड़पकर मर जाती।···सुख का एक क्षण भी कहीं उपलब्ध नहीं होता मुझे फिर भी यह पाप-रूपी शब्द मुझे समय-समय पर भयभीत करता है। इस बेल के हजारों हाथ मुझे दबोचने को आतुर रहते हैं।

मन्मथ ! प्रायः हर रात आता है। पति की शराबी नींद व थकान का लाभ उठाकर मैं उन अलभ्य क्षणों की प्राप्ति हेतु नीचे आ जाती हूँ। कुछ अन्तराल के बाद वह मुझे बाहों मे भरता है। उसकी बाहें अनन्त आकाश की तरह सुखमयी और विस्तीर्ण हैं। उसका प्यार आग की तरह प्रज्वलित है। जहाँ मेरे पति के शरीर मे बदबू, साँस मे बदबू, आवाज

मे बदबू है, वहाँ मन्मथ मे एक उत्तेजित दुःख-विस्मृता खुशबू होती है—अजीब और अलौकिक !

और मैं उसके प्रणय-बन्धन में खो जाती हूँ। तब मुझे लगता है कि मैं देव-शापिता हूँ। स्वर्ग की एक अभागी किन्नरी हूँ जो किसी शाप के कारण इन बदबुओं के घेरे मे घुटने के लिए भेज दी गई हूँ। मैं मन्मथ के सुखमय वक्ष मे अपना अश्रुभरा मुख छिपाकर सिसक पड़ती हूँ। अपने गोरे-गोरे चार बच्चों को स्मरण करके उससे कहती हूँ—"यह पाप है मन्मथ ! ईश्वर मुझे कभी माफ नही करेगा। दुर्भाग्यवश इन बच्चों को, मेरे इस पति को जिस दिन मेरी करतूतों की जानकारी मिलेगी, उस दिन घृणा का एक विस्फोट होगा। सच, मैं बहुत डरती हूँ।"

वह वासना मे लिप्त-सा बडबडाता है—"ईश्वर एक बकवास है।··· तुम उससे जरा भी मत डरो। उसके अस्तित्व को स्वीकारना महामूर्खता है।"

और अनायास-अनचाहे उसके बन्धन ढीले पड जाते हैं। एक अव्यक्त वेदना उसके चेहरे पर खुरदरे पत्थर की तरह उभर आती है। उसकी आवाज काँपने लगती है। लेकिन वह बडबडाना नही छोडता है—"तुम व्यर्थ उलझने की चेष्टा मत करो। वैसे मैं अनीश्वरवादी नही हूँ, पर मैं अन्धविश्वासों को भी तरजीह नही देता हूँ। प्रकृति सर्वोपरि है, आत्म-तुष्टि उससे भी महान् और प्रकृति का वरदान है। मैं कहता हूँ कि तुम्हारा प्रेम न तो आत्मवंचना है और न पति मे छलावा। सन्तोषजनक आनन्द व सुख के प्रति तीव्र रूप से आकर्षित होना स्वाभाविक है। हर व्यक्ति अच्छी चीज की लालसा करता है।···और तुम्हारे पति की बात ? वह विरूप और बदबुओं का घेरा तुम्हारे लायक है ही नहीं। उसकी आत्मा तुम्हें सम्पूर्ण सत्य के साथ ग्रहण नही कर सकती। तुम तो इसलिए भी महान् हो कि इतनी सुन्दर, शिक्षित व भावुक होने पर भी ऐसे नमगादड़ जैसे पति को अत्यन्त सामान्य भाव से इतने वर्षों से सहन करती आ रही हो। उसके परिवार को सम्भालती हो।" वह जिस उत्तेजित भाषा में बात करता है, ईश्वर की निन्दा करता है, उससे लगता है वस्तुतः वह ईश्वर से डर रहा है। बाद में वह बहुत उदास हो जाता है।

अब वातावरण में उमस बढ़ने लगी है। एकाएक क्षितिज के पूर्वी कोने से तूफान उठता है। उठकर सारे आकाश को अपने में ढाँप लेता है। बादल गरजते हैं, बिजली कड़कती है और जोर की बारिश होती है। सब नीचे जाकर क्षणिक व्यवधान के उपरान्त पुनः गहरी नींद में सो जाते हैं। पर मैं वर्षा में नहाती हूँ। मेरे शरीर में आनन्द लहराता है। इतनी तेज बारिश इसके पहले कई सालों से नहीं हुई थी। वर्षा जैसे आई, वैसे चली भी गई। मैं भीगी हुई मन्मथ की प्रतीक्षा करती रहती हूँ पर आज मन्मथ नहीं आता है, पहली बार बिना पूर्व-सूचना के उसने प्रतिज्ञा भंग की है।

सुबह होती है। मैं देखती हूँ कि तालाब भर गया है। मेरे गोरे-गोरे बच्चे किलकारियाँ भरते हुए उसे देख रहे हैं। छोटा बच्चा मुझसे आकर लिपट जाता है। फिर सभी मेरे पास आ जाते हैं। मैं ममता में डूब जाती हूँ। किसी का सिर, किसी का गाल, किसी के होंठ और किसी के पंखुरियों के समान हाथों को चूमती हूँ। मन में भी क्या अजीब स्थितियाँ हैं—पाप में भी सुख और पुण्य में भी सुख!

तभी उनका बाप कर्कश स्वर में आवाज लगाता है—"मैं चला दुकान, मेरा खाना वहीं पर भिजवा देना।" और वह काला—थलथला—विरूप इन्सान चला जाता है। न डाटा और न प्यार की एक दृष्टि। सहसा मैं अजीब अनुभूति से रोमांचित हो जाती हूँ और ईश्वर को हार्दिक धन्यवाद देती हूँ कि उसने मेरे तमाम बच्चों को मुझ पर ही पैदा किया है, वरना ये अपने बाप पर कितने घिनौने और अप्रिय होते! सब लोग इन्हें नफरत करते।—और मैं उन्हें अत्यन्त भावावेश में चूमने लगती हूँ।

चौदह रातें फिर आती हैं और चली जाती हैं, पर मन्मथ नहीं आता है। मुझे लगता है—मेरे जिस्म में अब न तो पतझड़ आता है और न बसन्त। मेरी सारी अनुभूतियाँ मुर्दा हो जाती हैं। मैं रात-रातभर जागकर उसकी प्रतीक्षा करती हूँ। कभी-कभी रातों की लम्बाई को कम करने के लिए तारे मेरे पास आकर कहानियाँ सुनाते हैं।

पूरे पन्द्रह दिन बीत जाते हैं। तालाब सूख जाता है, उसकी बेल सड़ जाती है और मैं सुख की जगह एक अज्ञात आशंका और अनागत अमंगल से परेशान हो जाती हूँ। चाहे-अनचाहे सोचती हूँ कि बेल क्यों सड़ गई?

काम से बाजार जाती हूँ। रास्ते में मन्मथ मिलता है। जीवन में पहली बार उसे सड़क पर पुकारती हूँ। एक प्रतिष्ठित व्यापारी की पत्नी आम रास्ते में कैसे पर-पुरुष से बातचीत कर सकती है? फिर भी मैं उससे करती हूँ, क्योंकि पन्द्रह दिनों के बिछोह के अलावा आज उसके साथ एक जवान लड़की भी है। एक हल्की-सी जलन दिल में होती है। मन्मथ संकोच से गर्दन नीची करके कहता है—"यह मेरी लड़की है। इसका अगले महीने विवाह होगा। बिटिया जरा आगे चलो तो!" उसकी बेटी चली जाती है। कुछ अन्तराल हो जाता है—हम दोनों के बीच।

"मुझे तुम भूल जाना, अब मैं नहीं आऊँगा। जवान बच्चों की आँखें व कान बड़े तेज होते हैं और फिर तुम्हारे भी तो बच्चे अब बड़े हो रहे हैं।···आज से पन्द्रह दिन पहले रात को मेरी बेटी ने मुझे घर से निकलते हुए टोक दिया था। कहा था—"बस बाबूजी, अब बस।···कल तुम्हारे भी बच्चे"···उसकी लड़की घृणा से मेरी ओर घूरती है। मैं स्तब्ध हो जाती हूँ।

सूखे तालाब के पास आकर देखती हूँ—दरारें और चौड़ी हो गई हैं उसकी। बेल की सड़ांध बढ़ गई है और तालाब के तलुए पर सड़ी हुई बेल की शाखाएँ भयानक जाल-सी फैल गई हैं और उनमें घायल, रस-निचोड़ी और सूखी-सूखी एक मछली उलझकर तड़प रही है। मछली जीवित, पर तड़पती हुई।

मैं यन्त्रवत् और किसी अज्ञात आकर्षण द्वारा खिंची हुई अपने घर के दरवाजे पर आती हूँ। मुझे एक बार वह मछली, सड़ी हुई बेल की सड़ांध, उसका भयानक जाल, मछली का तड़पते हुए जीना याद आते हैं और मेरी आँखें भर आती हैं। तभी बच्चे माँ-माँ करके मुझसे लिपटते हैं और मैं उन्हें सिसकते हुए चूमने लगती हूँ, क्योंकि मेरे सामने एक रात—गहरी अँधियारी रात आकर खड़ी हो जाती है—निर्वसना। दुःख-दर्द, बदबू और शराब से भरी हुई एक नीरस रात। मैं सिसक पड़ती हूँ, जैसे यह जन्म विसंगतियों का एक हुजूम है।

वापसी

"यह सब पागलपन है।" रिसू ने नरेन्द्र को समझाते हुए कहा—"इससे घर उजड़ जाता है।"

"शायद तुम्हारी नजर मे।" नरेन्द्र ने अपने दोनो कन्धो को हल्के से उचकाकर कहा—"हर आदमी के सोचने का अलग-अलग नजरिया है। आदमी भेड नही बन सकता।"

"आदमी भेड तो नही बन सकता, पर हाथी भी नही बन सकता।" रिसू ने जरा उत्तेजित स्वर में कहा—"कुत्ते भौंकते रहते हैं और हाथी चलता रहता है, पर आदमी ऐसा नही कर सकता। जानवर और आदमी मे बड़ा फर्क होता है।"

नरेन्द्र ने बहुत ही तीखी नजर से रिसू को देखा। वह नितान्त असामान्य लग रहा था और उसकी आकृति तनावो से घिरी हुई थी। वह बोला, "मैं सूक्तियो जैसे वाक्यो मे उलझना नही चाहता। मैं इतना ही कहना ठीक समझता हूँ कि मैंने जो कुछ किया है, खूब सोचकर किया है। अजनबीपन मे अपनेपन की स्थिति को नही जिया जा सकता।"

रिसू ने अपने बिखरे बालों पर हाथ फेरा। लम्बी-सी साँस लेकर बोला—"मैं मानता हूँ, पर मियाँ-बीबी मे तो झगड़े होते ही रहते हैं। इसका मतलब यह तो नही है कि तुम उसे घर से ही निकाल दो। आपस में बातचीत करके सब-कुछ ठीक-ठाक कर लेना चाहिए। यह मामला केवल तुम तक सीमित नही रहेगा। वह कानून की सहायता से भी ले सकती है। तुम्हें कोर्ट के चक्कर लगाने पड़ेंगे। वकील जिरह करेंगे। सवालो का घेराव होगा। फिर भयंकर बदनामी होगी। जीना दुश्वार हो जाएगा।"

नरेन्द्र ने कोई जवाब नही दिया।

ड्राइंगरूम में गहरी खामोशी पसर गई। खिड़की से एक चिड़िया घुसकर व्यर्थ ही चक-चक करने लगी। एकाएक उसने बीट की, जो मिसेज नरेन्द्र की प्यारी गुड़िया के चेहरे पर पड़ी और चेहरा विकृत हो गया।

रिसू को लगा कि हर वस्तु नरेन्द्र की पत्नी नलिनी के विरुद्ध बगावत कर रही है। उसकी गुड़िया का चेहरा भी खराब हो गया। समय ही बुरा है।

वह उठा। यूं ही कमरे में चहलकदमी करने लगा। धूप का एक टुकड़ा अपंग बुढ़िया की तरह आहिस्ता-आहिस्ता खिड़की से उतरकर दरी पर आ रहा था। सन्नाटा पसरा हुआ था। दोनों दोस्त धीरे-धीरे अजनबी बन गए थे। सहसा रिसू चहलकदमी करता-करता रुका, अकड़कर खड़ा हो गया।

"तुम अपने निर्णय पर अटल हो?" रिसू ने ही उस अप्रिय सन्नाटे को भंग किया।

"बिल्कुल। यह मूँछवाले का निर्णय है। समझे?" नरेन्द्र ने सामन्ती लहजे में अपनी मूँछों पर ताव देकर कहा।

"फिर जाओ भाड़ में। लेकिन तुम्हें इससे न तो शान्ति मिलेगी और न चैन।" रिसू ने मानो उसे शाप-सा दिया—"बदनामी के काँटे तुम्हें डसा देंगे।"

रिसू तीर की तरह निकल गया। नरेन्द्र ने अत्यन्त ही बेपरवाही से कंधे उचकाए और मन-ही-मन बोला—"बोदा कहीं का!"

छह का लड़का। पर इधर नरेन्द्र का व्यवहार बहुत ही रूखा हो गया था। वह जितना रूखा, उत्तेजित और गुस्सैल होता जा रहा था, नलिनी उतनी ही शांत, संयत और खामोश होती जा रही थी। वह पति के बदले व्यवहार में उसकी कोई व्यापारिक परेशानी ही समझती थी। उसके पति का ठेकेदारी का अच्छा-खासा धंधा था। लेकिन जैसे सम्बन्धित अधिकारियों का तबादला होता वैसे ही नरेन्द्र की परेशानियाँ बढ़ जाती थी। उसने कई बार पूछा—"तुम उखड़े-उखड़े क्यों रहते हो?"

"मैं तो नहीं रहता।" वह साफ इन्कार कर जाता—"मुझे तो तुम उखड़ी-उखड़ी हुई लगती हो।"

"उल्टा चोर कोतवाल को डाँटे!" नलिनी कहती—"देखो कोई परेशानी हो तो बताओ। आखिर मैं तुम्हारी पत्नी हूँ।"

"पत्नी होकर पीड़ा न पहुँचाओ।"

"अजीब स्थिति है।"

नरेन्द्र ने आग्नेय नेत्रों से देखा। उसे लगा कि वह जैसे ही अपनी पत्नी को देखता है, एक अजीब-सी लिजलिजी ऊब, खालीपन और उकताहट से भर जाता है।

एक दिन उसने पूछा, "तुम अहिल्या तो नहीं हो?"

"छि-छि! मुझे अहिल्या कहते हो?" नलिनी ने बिगड़कर कहा—"शर्म नहीं आती?"

"मेरा मतलब है कि तुम्हें मेरे रूखे व्यवहार व उपेक्षा से गुस्सा क्यों नहीं आता?"

"मुझे लग रहा है कि आप परेशान हैं।" नलिनी ने कहा—"किसी अफसर की बदली हो गयी?"

"जी नहीं।"

"फिर?"

"मुझे यह घर और तुम सब काटने दौड़ते हो।" उसने तुनककर कहा।

उस दिन तो नरेन्द्र ने हद ही कर दी। वह गुस्से में आया। उसने आते ही

कहा—"सिर में दर्द है।"

नलिनी ने झट से स्टोव जलाकर चाय का पानी चढाया। नरेन्द्र ने चीखकर कहा—"महारानी जी, मेरे सिर मे दर्द है। मुझे स्टोव की सायं-सायं अच्छी नही लगती। इसे बुझा दीजिए।"

"चाय बना रही हूँ।" नलिनी ने बताया—"इससे राहत मिलेगी।"

"भाड़ में जाय तेरी चाय! स्टोव बन्द करो!" वह गरजा।

नलिनी भयभीत हो गई। उसने पति के नजदीक आकर उसके जूते खोलने चाहे, परन्तु नरेन्द्र ने एक हलकी चोट उसके नाक पर दे मारी—"मुझे यह पाखण्ड अच्छा नही लगता। यह पतिव्रत-धर्म बहुत पुराना और खोखला हो चुका है।"

यह चोट इतनी अप्रत्याशित थी कि नलिनी सोच भी नहीं पायी कि यह हरकत उसके पति ने क्यों की? वह भी क्रोध में भर आयी। उसने खड़े होकर कहा—"यह क्या बदतमीजी है? आखिर मैं आपकी कोई गोली (दासी) नही, पत्नी हूँ। मेरे साथ आपको सम्मानजनक व्यवहार करना चाहिए।"

"पत्नी का मतलब क्या होता है? इसका मतलब होता है वह एक अच्छी गोली होती है। उसे एक अच्छे पति, एक आरामदेह घर और आज्ञाकारी सन्तानो की इच्छा रहती है। स्त्री पत्नी नही, मात्र दासी हो सकती है।"

"ओह! आपकी ज्यादा आज्ञा मानती हूँ तो आप मुझे अपने गौरव से भी हटाने लगे?" नलिनी ने गुस्से मे कहा।

"तुम्हारा इस घर मे कोई रुतबा नही है। मेरे टुकड़ों पर पलने वाली हो। टुकड़खोर कही की!" वह झल्लाया।

"मुझे टुकड़खोर कहा?…मैं भी कमा सकती हूँ। पढ़ी-लिखी हूँ। सोचती हूँ घर की मान-मर्यादा न तोड़ूँ तो अच्छा।" उसने चेतावनी-भरे स्वर में कहा।

"तुम में तोडने की क्षमता है?" उसने व्यंग किया।

"क्यो नही है? देखो मैं आपका अभद्र व्यवहार इसलिए सह रही हूँ कि हमारे बच्चे बडे हैं। हम अच्छे खानदान के हैं।"

सारी बात बतायी और पूछा—"यह कौन-सी बात हुई ? इतनी बदनामी और अलगाव की घोषणाओं के बाद समझौता ?"

डॉ० पुरोहित को भी सारी स्थितियों की जानकारी थी। उसने सोच-कर कहा—"मुझे लगता है कि इस चौंकाने वाली महत्त्वपूर्ण घटना के पीछे कोई ठोस कारण नहीं है। मैं जहाँ तक समझता हूँ कि ये दोनों, खासकर नरेन्द्र, एक ढर्रे का जीवन जीते जीते ऊब गए थे। जीवन की एकरसता यानी मोनॉटनी को तोड़ने के लिए कभी-कभी आदमी चाहे-अनचाहे ऐसी पीड़ाभरी स्थितियाँ पैदा कर लेता है। फिर जब वह इनसे भी ऊब जाता है तो पुनः उसी बिन्दु पर आ जाता है''नरेन्द्र का जीवन भी तो एक धुरी पर चल रहा था। उसकी यह बगावत सिर्फ एकरसता तोड़ने के लिए थी।"

रिमू को डॉक्टर की बात जँची। वह नरेन्द्र के घर की ओर चल पड़ा। वहाँ जाकर देखा तो चौंक गया। नलिनी चाय बना रही थी। नरेन्द्र ने रिमू को देखकर कहा—"यार ! अब तो खुश हो ? तुम्हारी भाभी को हाथ जोड़कर वापस ले आया हूँ।"

"इसके लिए इतना वितण्डावाद क्यों किया ?"

"लगता है, तब मेरा माथा खराब था। अच्छा तुम माफ करो, आओ चाय पिएँ।" रिमू फिर भी चुप था।

"लेकिन मैं अब तुम्हें नही सह सकता। मरी हुई मछली कहीं की !"

दोनों के बीच आरोपों से भरी कटु बातें सुनकर बच्चे आतंकित हो गए। आखिर नलिनी अपने बच्चों को लेकर दरवाजे पर खड़ी हो गयी। वह तड़पकर बोली—"मुझे लगता है कि आप हम सबसे ऊब गए हैं। मैं इस घर मे अब नही रह सकती। यदि आप मुझे निकाल सकते हैं तो मैं भी दूसरा घर बसा सकती हूँ।"

"जा-जा बसा ले।" उसने लापरवाही से कहा।

नलिनी डबल एम०ए०, बी०एड०। घर से जाते-जाते उसने कहा—"दम हो तो दूसरी बहू ले आना। मैं भी अब नही आऊँगी। आखिर कोई पागल जैसे आदमी के पास रहकर कब तक जुल्म सहता रहेगा! लेकिन आपने मुझे अकारण सताया है—भगवान आपको देखेगा।" वह रुआँसी-सी हो गयी।

नरेन्द्र ने जोर-जोर से अपनी पत्नी की हर जगह निंदा करनी शुरू कर दी। सम्बन्ध-विच्छेद की बात ने विभिन्न जबानों का स्पर्श पाकर कई रंग ले लिए। नलिनी को उसकी सहेलियाँ समझाने लगी। उनका एक ही तर्क था—"बच्चों की जिन्दगी खराब हो जाएगी।" नलिनी ने इसकी परवाह नही की। वह भी एक ही बात कहती रही—"मैं अपमान का जहर पीकर नही जी सकती। वह जमाना लद गया कि पत्नी रोटी-कपड़े के बदले जुल्म सहती रहे।"

लगभग यही स्थिति नरेन्द्र के दोस्तों की थी। पर नरेन्द्र ने अकडकर यही कहा—"वह बहुत रूखी व रद्दी किस्म की औरत है। खूब ऊबाने-वाली···"

समय बीतता गया। बातें जो बतंगड बनी, वे धीरे-धीरे शांत हो गयी।

एक दिन अचानक रिसू को मालूम पड़ा कि नरेन्द्र नलिनी को अनुनय-अनुरोध करके वापस घर ले आया है।

रिसू आश्चर्य से डूब गया। उसने मनोविज्ञान के डॉक्टर पुरोहित को

दलदल

धनसुख ने कहा कि वह दावे के साथ कह सकता है कि रामिये कुम्हार का गधा इसी दलदल में फँसकर मरा है। हालाँकि उसने यह सब आँखों से नहीं देखा था, केवल अनुमान लगाया था और लोग उसे हजार बार कह चुके थे—"धनसुख काका! तुम अनुमानों पर सरपट न भागा करो।" पर वह इस मामले में किसी की भी बात सुनने को तैयार नहीं होता था और वह अपने आस-पास की हर घटना और दुर्घटना के बारे पल-पल नयी *खोजपूर्ण बातें कहता रहता था।*

आज भी उसे सुबह-सुबह यह सूचना मिली थी कि रामिये कुम्हार का गधा गायब है, वह कल रात दलदल के आसपास देखा गया था।

बस, धनसुख चौराहे पर बनी चौकी पर बैठकर चिलम फूँकने लगा और बतियाने लगा, 'बेचारे गरीब रामिये का गधा जरूर इसी दलदल में फँसकर मरा है। जरा सोचिए, यह दलदल कितना गहरा है? सड़ा हुआ और भयानक भी है। गधा क्या, इसमें तो हाथी तक समा सकता है।'

धनसुख ने चिलम चलायी। अपने आसपास के श्रोताओं को चिलम पीने के प्रति आकर्षित करता हुआ वह पुनः बोला, "आप लोगों को इस दल-दल के बारे में कुछ भी पता नहीं। इस दलदल के साथ तो समूची व्यवस्था के भ्रष्टाचार की कहानी जुड़ी हुई है।···मेरी बात को गौर से सुनिए और चिलम का एकाध कश भी भर लीजिए। बढ़िया तम्बाकू है।···तो मैं कह रहा था कि यह दलदल तब से है जब आप में से कोई पैदा ही नहीं हुआ था। यह भी सम्भव है कि आप में से चन्द व्यक्ति पैदा तो हो गये हों पर नगे घूमते हों।" धनसुख ने उन्हें घूरकर चिलम का फिर कश लिया और वह लम्बे स्वर में बोला, "शायद जाँघिया पहनकर इधर-उधर डोल

रहे हों, पर यह चाँद-सूरज की तरह सच है कि इस दलदल की कहानी बहुत पुरानी है। ''अरे माइयो ! मैं तो इसे देखते-देखते बूढ़ा हो गया और मेरी माँ भी यही कहती थी। यानी यह दलदल नहीं है बल्कि एक निकम्मी, जन-शत्रु और रिश्वतखोर व्यवस्था का जीता-जागता नमूना है। उपहारसिंह के राज्य में तो यह दलदल और भी भयानक था। कारण भी स्पष्ट था कि राजा के जमाने मे शहर के बाहर अफसर झाँकते भी नहीं थे। वे कूप-मडूक बने हुए थे। यानी वे चारदीवारी के बीच रहते थे।''

उसने चिलम उलटाकर रख दी। उसी समय सुखली मालिन आ गयी। सुखली मालिन अपनी सब्जी की ओडी को रखकर सुस्ताने लगी। तभी धनसुख बोला, "सुना सुखली, इस दलदल ने एक भक्षण और ले लिया है। कल बेचारे रामिये कुम्हार का गधा फिर इसके पेट में समा गया है।"

''यह तुमने अपनी आँखों से देखा था ?"

''हर बात देखकर ही कही जाती है ?" धनसुख ने तर्क प्रस्तुत किया, क्या राम-कृष्ण को तुमने देखा है ? ब्रह्मा-विष्णु-महेश क्या तुम्हारी नजर से गुजरे हैं ?···नहीं न ! तो उन्हें क्यों मानती है ?···जब गधा रात को इस दलदल के पास ही देखा गया है तो गधा सोलह आने इसी दलदल में समा गया है। जमीन तो उसे खाने से रही।"

"कहीं बजरी की खानों मे खड़ा मिल सकता है !"

"तो तेरा एक रुपया और मेरे दस रुपये !" धनसुख ने अपनी बिल्ली जैसी कंजी व तीखी निगाह से घूरकर और थोड़ा उचककर कहा, "लगा शर्त !" उसने अपनी हथेली फैला दी।

सुखली डर गयी। अपनी ओडी उठाकर बोली, "शर्त लगाने के लिए पैसे चाहिए और मेरे पास तो एक टक्का भी नहीं है। इस राज ने तो गरीबों की कमर ही तोड़ दी।'' और वह चलती बनी।

उसी समय दीना स्वामी, छोगिया भाट और लूणिया जाट उधर से गुजरे।

धनसुख ने उन्हें आवाज लगाकर कहा,"सुना तुम लोगों ने ? इस दल-दल ने एक और जान ले ली है ! बेचारा रामिये का गधा······।" उसने बड़ी करुणा से उपस्थिति की ओर देखा। बोला, "यह दलदल एक दिन इस

मोहल्ले को ही निगल जायेगा। अरे भाई, बैठो न! यह दलदल बहुत पुराना है। राजा उपहारसिंह के काल का।...आजादी के पहले का। फिर आजादी आ गयी। कांग्रेस का राज आया। लोग शिकायत करते रहे और इस दलदल को समाप्त करने की योजनाएँ बनती रहीं। इसे हटाने के कई बार कागज बने, पर हटा नहीं। शायद यह आगे भी न हटे!"

"लेकिन क्यों?" छोगिया ने हुमककर कहा।

"इसलिए कि इसका सम्बन्ध राजनीति से है।" धनसुख ने गम्भीर होकर यह वाक्य उगला जैसे उसने कोई महत्त्वपूर्ण सत्य कहा हो।

"राजनीति से दलदल का क्या सम्बन्ध हो सकता है?"

इस बार धनसुख मुस्कराया। फिर बोला, "आज की राजनीति और दलदल एक-दूसरे के चट्टे-बट्टे हैं। यह दलदल यहाँ की राजनीति का प्रतीक है। मेरी बात पर गौर करो। मैंने अपने बाल धूप में सफेद नहीं किए हैं। मैंने बड़ी दुनिया देखी है। यह दलदल जब तक पूरा आदमखोर न हो जाएगा तब तक इसको नहीं मिटाया जायेगा। इसको तो निरन्तर 'भक्ष' लेने चाहिए। जैसे तीन-चार दिन लगातार आदमी मरे या किसी पार्टी का बैल, मुर्गा या बकरी इसमें धँसे। मैं आपको बता रहा हूँ...कांग्रेस राज्य की बात है—विरोधी नेता के साले का बछड़ा इस दलदल में फँस गया। निकाले कौन? किसकी हिम्मत? बछड़ा तड़पता रहा। धीरे-धीरे दलदल में धँसता गया। पर विरोधी नेता ने तुरन्त एक मीटिंग बुलाकर नगर-न्यास और जिलाधीश की लापरवाही पर आक्रोश प्रकट करके एक विरोध-पत्र दे दिया। जुलूस तक निकाल डाला। बड़े लोग थे, और जिलाधीश और वर्तमान कांग्रेस सरकार की हाय-हाय के नारे लगा रहे थे।...

"रातभर में बछड़ा तो दलदल बन गया। तब कांग्रेस के एम०एल०ए० ने संवाददाता-सम्मेलन में कहा—यह दलदल पीढ़ी-दर-पीढ़ी से यहीं है। इसे हटाने के लिए बेचारे हरिजनों के मकानों को तोड़ना पड़ता है। इससे उनका जमा-जमाया बर्फ-सा ठंडा और स्थिर जीवन उखड़ जायगा और सरकार शोषित हरिजनों को कोई कष्ट देना नहीं चाहती।" धनसुख ने अपनी बायीं हथेली दायीं हथेली पर जोर से पटकी और कहा, "सरकारी पार्टी के नेता ने बताया—विरोधी झूठा प्रचार कर रहे हैं कि दलदल में कोई

बछड़ा गिरा है। यह सब सरकार को बदनाम करने के थोथे तरीके हैं। फिर भी जाँच-आयोग बैठाकर प्रजा के भ्रम का निवारण किया जायेगा।"

धनसुख ने उपस्थिति को दृष्टि मे भरकर कहा, "मुझे बड़ा गुस्सा आया। बछड़ा दलदल में विलीन हो गया और एम० एल० ए० साहब इन्कार कर रहे हैं ?···मैंने कहा न, यह राजनीति है। हरिजनों से वोट लेने की राजनीति! वर्षों से यह दलदल आबादी को कष्ट दे रहा है, पर राजनीति इसे खत्म करने नही देती। दलदल के चारों ओर हरिजन सुथार, बामण और माली जो बसे हुए हैं। उनके वोट चाहिए न ? दलदल को हटाने के लिए किसका घर तोड़ें ? पर मैं दावे के साथ कह सकता हूँ—बेचारा बछड़ा इसी दलदल मे गया··· वेचारे रैवतचन्द का बैल भी इसी दलदल की भेंट चढ़ गया।···गाय माँ के बच्चे की दुराशीष का चमत्कार हुआ—कांग्रेस का बंटाढार! मैंने पहले ही कह दिया था—इस दलदल में जिस तरह बछड़ा तड़पा है वैसे ही कांग्रेस पार्टी तड़पेगी···गयी न दो के भाव ? 30 साल का शासन खत्म हो गया। पानी देने वाला भी न बचा। हाँ, कथा लगाने वाले तो जरूर बच गये।···

"जनता पार्टी के आते ही लोगों ने कहा—अब यह दलदल हटेगा। पर दलदल नहीं हटा। वोट का सवाल आ गया था न ? दलदल हटाने के लिए बड़ा नाला बनाओ।" उसके लिए फिर सात सदस्यों के एक दल का गठन हुआ; इनमें विरोधियों को भी रखा गया। दल की कई बैठकें हुईं पर कोई निर्णय नही हो सका। लगभग पैंतालीस नक्शे बन गये। हर पार्टी का आदमी दलदल के आस पास आकर फुसफुसा देता है—मैं आपके मकानों को नहीं तोड़ने दूँगा चाहे सरकार कितना ही जोर लगा ले।···है न राजनीति ? अरे! इस बार तो सभी दलों ने मिलकर दल की विशेष बैठक गर्मी के कारण किसी पहाड़ पर की है।··· मुझे पता है कि ऐसे चार दलदल हटाने का पैसा तो नक्शों, बैठकों व विचारों में खर्च हो चुका है।"

"लेकिन ये सब बातें आपको···।" किसी ने पूछा।

धनसुख हँसा। बोला, "मैं कोई गँवार नहीं। सन् 30 का मैट्रिक हूँ। इन लोगों ने जितना आटा खाया है उतना तो मैं नमक खा चुका हूँ।···

मेरे गुप्तचर चारों ओर फैले हुए हैं। फिर मेरे अनुमान गलत नहीं हो सकते।...

"एक दिन तो यू० आई० टी० के ओवरसीयर ने बड़ी चालाकी की। ये रिश्वतखोर अधिकारी भी अलग ही पंचतत्त्वों के बने हुए होते हैं। आम आदमी की करुणा, दया, ममता, उद्रेक व आँसू उनमें नहीं होते।... पत्थर के लोग होते हैं ये। देखा केदार, यदि तुम अपने बेटे को कभी नौकरी लगाओ तो आर०सी०पी०, पी०डब्ल्यू०डी०, नगरपालिका, यू०आई०टी०, इनकम टैक्स, सेल टैक्स दफ्तरों में ही लगाना।... ये डिपार्टमेंट नहीं दुधारू गायें हैं। दुहते रहो पर इनका दूध खत्म नहीं होगा।"...उसने केदार को सवालभरी निगाह से देखा और पूछा कि "मेरी बात को समझ रहा है? ...तू *साला अँगूठा-छाप मेरी बात को क्या समझेगा? तेरे लिए तो काला* अक्षर भैंस बराबर है न?...अपने बेटे को भेज देना, सब समझा दूँगा।...

"तो एक दिन ओवरसीयर ने एक 'बुलडोजर' को दिखाकर कहा—कल से मकान तोड़ने शुरू हो जायेंगे और दलदल हटेगा। दलदल के चारों ओर की बस्तियाँ काँप उठीं। बस्तियों के लोग उस ओवरसियर के पास अलग-अलग गये। सबने दूसरे की बस्ती को मिटाने के लिए उस ओवरसीयर को रिश्वत दी। ओवरसीयर ने अपने गिद्ध जैसे कोंचे हुए चेहरे को बार-बार पोंछकर कहा—केवल पाँच सौ रुपयों में मैं साहब को राजी करके कुम्हारों की जगह मालियों के मकान तुड़वा सकता हूँ।...

"और उसने हर बस्ती वालों से पाँच-पाँच रुपये लेकर दो हजार रुपये अपनी जेब में डाल लिये। उसने राजनेताओं को भी बेवकूफ बनाया कि आपके हुक्म को यह नाचीज कैसे टाल सकता है, आपकी डाँट से ही सचिव महोदय ठंडे पड़ गये।...

"हर पार्टी के नेता को उसने यही कहा। परिणाम यह निकला कि दलदल फिर नहीं हटा। फिर सत्ता बदल गयी। यह दलदल हटेगा नहीं। मैं कहता हूँ यह कभी भी नहीं हटेगा। यह सड़ाँध मिटेगी भी नहीं। समूची भ्रष्ट व्यवस्था के साथ इसका जुड़ाव है। सारी सड़ियल राजनीति से इसकी पैदाइश है और पनाह है।...बेचारे रामिये का गधा! ...गरीब कुम्हार मर गया...मजा आये कि एक दिन इस दलदल में किसी नेता की

जीप फँसे।"

"धनसुख काका, ऐसा आप क्यों कहते हैं ?" किसी ने विनीत स्वर में कहा।

"इस दलदल का महत्त्व तभी होगा।" धनसुख ने गर्दन को पैंडुलम की तरह हिलाकर कहा, "तभी पत्रकार इसे महत्त्व देंगे।"

और उस दिन नेता का ड्राइवर दारू पीए हुए था और उसकी जीप दलदल में फँस गयी।

धनसुख ने तुरन्त ही हनुमानजी के सवा रुपये का प्रसाद किया। उसने कहा, "अनुमान सही निकला न ?"

लोग हैरान ? उसी दिन क्रेन लायी गयी। पत्रकार आये। अधिकारी आये और नेताजी की जीप को निकालने की चेष्टा की गयी। जीप दलदल में काफी धँस गयी थी। बड़ी मेहनत और जद्दोजहद के बाद उसे निकाला गया। जीप सड़ाँध के कारण वीभत्स व घृणास्पद लगने लगी।

उस सड़ाँध को जब धोया गया तो उसमें से चाँदी का एक गहना निकला। वह किसी अनजान व बेनाम औरत का गहना था।

धनसुख ने चट से अनुमान लगाया—"यह गहना प्रजाराम की बहू का है। चोरी चला गया था।"

दूसरे दिन अखबारों में घोषणा हुई कि नगर के बीचोंबीच स्थित दलदल को हटाने के लिए युद्धस्तर पर कार्य शुरू हो गया है।

धनसुख ने कहा, "तभी आन्ध्र प्रदेश में तूफान आ गया और यहाँ का कार्य ठप्प हो गया। दलदल हटाने का सारा बजट तूफान-पीड़ितों को भेज दिया गया। काश ! फिर किसी नेता की जीप फँसे ताकि दलदल हटाने का कार्य युद्धस्तर पर हो !" और धनसुख ने चिलम का कश लिया। चिलम भक से जल उठी।

मैं इस सिंहासन की आखिरी पुतली हूँ। मुझसे पहले दूसरी 31 पुतलियों ने धर्म निभाया और उन्हें बेमौत मरना पड़ा, क्योंकि उन्होंने अपने-अपने स्वामियों को उनके स्वार्थी, अविश्वासी, अनैतिक मन्त्रीगणों एव सभासदों से सचेत किया था और आपने उन्हें बेरहमी से तोड डाला।"

"मगर···।"

"मेरे स्वामी, मैं पुतली हूँ। राजा विक्रमादित्य के समय से मैं अपना फर्ज निभाती आयी हूँ कि इस सिंहासन पर बैठने वाले को मैं इसकी गरिमा बताऊँ। हाय! इस सिंहासन की गरिमा तो जाती रही। अब तो इसकी 31 पुतलियाँ ही टूट गयी हैं। फिर भी मैं अपनी परम्परानुसार आपको एक कहानी जरूर सुनाऊँगी। बाद मे आप मुझे तोड सकते हैं। सुनो! एक जंगल मे चद सियार रहते थे। उनमे बडा ही सगठन था। उनसे जगल का राजा भी खौफ खाता था। सघे शक्ति कलौ युगे···इस युग मे जिसके पास सगठन है, उसके पास सब-कुछ है। सियार जब निकलते थे तो एक-साथ·· दूसरे जानवर उस भीड़ से घबराते थे। दूसरो को जलन थी कि ये सियार होकर जंगल पर शासन करते हैं?···

"एक दिन एक गदरायी लोमडी को कौवा मिला। कौवे ने कहा, 'लोमडी बहन, तुम्हारे होते हुए ये सियार जगल के राजा बने हुए हैं? इस पृथ्वी पर सबसे ज्यादा चालाक व अक्लमंद तो तुम हो।'

लोमडी ने कहा, 'मगर मैं क्या कर सकती हूँ कौवे भैया?'

'अपनी अक्ल का करिश्मा दिखाओ।'

लोमड़ी ने सोचकर कहा, 'अच्छा बताऊँगी।'···

"उसने काफी सोचकर एक षड्यंत्र किया। वह सदा पाँच-सात अन्य जानवरो को लेकर सियारों के पास पहुँचती और कहती, 'ये आपके गुलाम बनना चाहते हैं।' इस तरह उसने अनेक नस्लो के जानवरों को सियारों के साथ मिला दिया और उन नये जानवरो ने हर सियार मे गलतफहमी भर दी कि राजा बनने लायक तो आप हैं। गलतफहमी ने झगड़े का रूप धारण किया। एकता टूटी तो लोमडी शेर को बुला लायी और शेर ने सियारों को गुलाम बना लिया। जब उसने लोमडी को भी पंजा [illegible] ना शुरू [illegible] तो लोमड़ी घबरायी। शेर ने तो यहाँ तक अत्याच [illegible]

जब उसे भूख लगती तो वह किसी जानवर को मारकर खा जाता।···

"जानवरों में हाहाकार मचा। वे लोग लोमड़ी के पास गये और उन्होंने यह आरोप लगाया कि उसके कारण शेर जंगल का राजा बना और वह अब मनमाने अत्याचार कर रहा है।···

"लोमड़ी उदास-सी हो गयी। करे तो क्या? फिर भी उसने आश्वासन दिया कि वह कुछ करेगी, क्योंकि कल शेर मुझे भी खा सकता है।···

"एक दिन लोमड़ी आधी रात को इधर-उधर भागती हुई दिखायी पड़ी। कभी वह सियारों के पास जाती, कभी भालुओं के पास, कभी हाथियों के पास और कभी भेड़ियों के पास।···

"सुबह ही शेर ने देखा कि एक बहुत बड़ा शेर जंगल के जानवरों के साथ आ रहा है। उसके आगे-आगे लोमड़ी चल रही है।

"लोमड़ी भागकर आयी और उसने कहा, 'शेर राजा भागो · तुम्हारे जानवरों ने विद्रोह कर दिया है···अब ये दूसरे बड़े शेर राजा को साथ लिये हुए हैं। ये सब मिलकर तुम्हारी हत्या कर देंगे।'

"बेचारा शेर भीड़ देखकर भाग गया।···

"नया शेर तो साँड़ था जो शेर की खाल ओढ़े हुए था। इसके बाद जंगल में अव्यवस्था फैल गयी। हर जानवर कुछ जानवरों को अपने पक्ष में करके शेर की खाल ओढ़ लेता था और राजा बन जाता था। यह तमाशा खूब चला और जंगल में अराजकता फैल गयी। जंगल के सारे जानवर दल-बदलू, रंगबदलू ···लालची और अवसरवादी हो गये। नित्य ही राजा बदल जाता था"

"तो तुम समझती हो कि मैं···?" राजा ने व्यग्रता से कहा।

पुतली खिलखिलाकर हँस पड़ी। उसने उँगली से कहा, "देख राजा अपने पीछे···!"

राजा ने पीछे देखा तो हैरान हो गया। उसके सारे मन्त्रीगण व सभासद गये थे। केवल प्रधानमंत्री खड़ा-खड़ा सुबक रहा था।

कहाँ गये?" राजा गुर्राया।

भाग गये। कहते थे कि हमें राजा अभी से आँखें दिखाने करेंगे?"

मैं इस सिंहासन की आखिरी पुतली हूँ। मुझसे पहले दूसरी 31 पुतलियों ने धर्म निभाया और उन्हें बेमौत मरना पड़ा, क्योंकि उन्होंने अपने-अपने स्वामियों को उनके स्वार्थी, अविश्वासी, अनैतिक मन्त्रीगणों एवं सभासदों से सचेत किया था और आपने उन्हें बेरहमी से तोड़ डाला।"

"मगर···।"

"मेरे स्वामी, मैं पुतली हूँ। राजा विक्रमादित्य के समय से मैं अपना फर्ज निभाती आयी हूँ कि इस सिंहासन पर बैठने वाले को मैं इसकी गरिमा बताऊँ। हाय! इस सिंहासन की गरिमा तो जाती रही। अब तो इसकी 31 पुतलियाँ ही टूट गयी हैं। फिर भी मैं अपनी परम्परानुसार आपको एक कहानी जरूर सुनाऊँगी। बाद में आप मुझे तोड़ सकते हैं। सुनो! एक जंगल में चंद सियार रहते थे। उनमें बड़ा ही संगठन था। उनसे जंगल का राजा भी खौफ खाता था। सघे शक्ति कलौ युगे···इस युग में जिसके पास संगठन है, उसके पास सब-कुछ है। सियार जब निकलते थे तो एक-साथ···दूसरे जानवर उस भीड़ से घबराते थे। दूसरों को जलन थी कि ये सियार होकर जंगल पर शासन करते हैं?···

"एक दिन एक गदरायी लोमड़ी को कौवा मिला। कौवे ने कहा, 'लोमड़ी बहन, तुम्हारे होते हुए ये सियार जंगल के राजा बने हुए हैं? इस पृथ्वी पर सबसे ज्यादा चालाक व अक्लमंद तो तुम हो।'

लोमड़ी ने कहा, 'मगर मैं क्या कर सकती हूँ कौवे भैया?'

'अपनी अक्ल का करिश्मा दिखाओ।'

लोमड़ी ने सोचकर कहा, 'अच्छा बताऊँगी।'···

"उसने काफी सोचकर एक षड्यंत्र किया। वह सदा पाँच-सात अन्य जानवरों को लेकर सियारों के पास पहुँचती और कहती, 'ये आपके गुलाम बनना चाहते हैं।' इस तरह उसने अनेक नस्लों के जानवरों को सियारों के साथ मिला दिया और उन नये जानवरों ने हर सियार में गलतफहमी भर दी कि राजा बनने लायक तो आप हैं। गलतफहमी ने झगड़े का रूप धारण किया। एकता टूटी तो लोमड़ी शेर को बुला लायी और शेर ने सियारों को गुलाम बना लिया। जब उसने लोमड़ी को भी पंजा दिखाना शुरू किया तो लोमड़ी घबरायी। शेर ने तो यहाँ तक अत्याचार करने शुरू कर दिये कि

मैं इस सिंहासन की आखिरी पुतली हूँ। मुझसे पहले दूसरी 31 पुतलियों ने धर्म निभाया और उन्हें बेमौत मरना पड़ा, क्योंकि उन्होंने अपने-अपने स्वामियों को उनके स्वार्थी, अविश्वासी, अनैतिक मन्त्रीगणों एवं सभासदों से सचेत किया था और आपने उन्हें बेरहमी से तोड डाला।"

"मगर···।"

"मेरे स्वामी, मैं पुतली हूँ। राजा विक्रमादित्य के समय से मैं अपना फर्ज निभाती आयी हूँ कि इस सिंहासन पर बैठने वाले को मैं इसकी गरिमा बताऊँ। हाय! इस सिंहासन की गरिमा तो जाती रही। अब तो इसकी 31 पुतलियाँ ही टूट गयी हैं। फिर भी मैं अपनी परम्परानुसार आपको एक कहानी जरूर सुनाऊँगी। बाद में आप मुझे तोड सकते हैं। सुनो! एक जंगल में बद सियार रहते थे। उनमें बड़ा ही संगठन था। उनसे जगल का राजा भी खौफ खाता था। संघे शक्ति कलौ युगे··· इस युग मे जिसके पास संगठन है, उसके पास सब-कुछ है। सियार जब निकलते थे तो एक-साथ··· दूसरे जानवर उस भीड़ से घबराते थे। दूसरों को जलन थी कि मे सियार होकर जगल पर शासन करते हैं?···

"एक दिन एक गदरायी लोमडी को कौवा मिला। कौवे ने कहा, 'लोमड़ी बहन, तुम्हारे होते हुए ये सियार जगल के राजा बने हुए हैं? इस पृथ्वी पर सबसे ज्यादा चालाक व अक्लमंद तो तुम हो।'

लोमडी ने कहा, 'मगर मैं क्या कर सकती हूँ कौवे भैया?'

'अपनी अक्ल का करिश्मा दिखाओ।'

लोमड़ी ने सोचकर कहा, 'अच्छा बताऊँगी।'···

"उसने काफी सोचकर एक षड्यन्त्र किया। वह सदा पाँच-सात अन्य जानवरों को लेकर सियारों के पास पहुँचती और कहती, 'ये आपके गुलाम बनना चाहते हैं।' इस तरह उसने अनेक नस्लों के जानवरों को सियारों के साथ मिला दिया और उन नये जानवरों ने हर सियार में गलतफहमी भर दी कि राजा बनने लायक तो आप हैं। गलतफहमी ने झगड़े का रूप धारण किया। एकता टूटी तो लोमडी शेर को बुला लायी और शेर ने सियारों को गुलाम बना लिया। जब उसने लोमड़ी को भी पंजा दिखाना शुरू किया तो लोमड़ी घबरायी। शेर ने तो यहाँ तक अत्याचार करने शुरू कर दिये कि

जब उसे भूख लगती तो वह किसी जानवर को मारकर खा जाता।···

"जानवरों में हाहाकार मचा। वे लोग लोमडी के पास गये और उन्होंने यह आरोप लगाया कि उसके कारण शेर जंगल का राजा बना और वह अब मनमाने अत्याचार कर रहा है।···

"लोमडी उदास-सी हो गयी। करे तो क्या? फिर भी उसने आश्वासन दिया कि वह कुछ करेगी, क्योंकि कल शेर मुझे भी खा सकता है।···

"एक दिन लोमडी आधी रात को इधर-उधर भागती हुई दिखायी पडी। कभी वह सियारों के पास जाती, कभी भालुओं के पास, कभी हाथियों के पास और कभी भेडियों के पास।···

"सुबह ही शेर ने देखा कि एक बहुत बड़ा शेर जंगल के जानवरों के साथ आ रहा है। उसके आगे-आगे लोमडी चल रही है।

'लोमडी भागकर आयी और उसने कहा, 'शेर राजा भागो ··तुम्हारे जानवरों ने विद्रोह कर दिया है···अब ये दूसरे बड़े शेर राजा को साथ लिये हुए हैं। ये सब मिलकर तुम्हारी हत्या कर देंगे।'

"बेचारा शेर भीड देखकर भाग गया।···

"नया शेर तो साँड था जो शेर की खाल ओढ़े हुए था। इसके बाद जगत मे अव्यवस्था फैल गयी। हर जानवर कुछ जानवरों को अपने पक्ष में करके शेर की खाल ओढ लेता था और राजा बन जाता था। यह तमाशा खूब चला और जगल मे अराजकता फैल गयी। जगल के सारे जानवर दलबदलू, रंगबदलू · लालची और अवसरवादी हो गये। नित्य ही राजा बदल जाता था "

"तो तुम समझती हो कि मैं···?" राजा ने व्यग्रता से कहा।

पुतली खिलखिलाकर हँस पडी। उसने उँगली से कहा, "देख राजा अपने पीछे···!"

राजा ने पीछे देखा तो हैरान हो गया। उसके सारे मंत्रीगण व सभासद भाग गये थे। केवल प्रधानमंत्री खड़ा-खड़ा सुबक रहा था।

"वे लोग कहाँ गये?" राजा गुर्राया।

"वे कम्बख्त भाग गये। कहते थे कि हमे राजा अभी से आँखें दिखाने लगे, बाद में क्या गत करेंगे?"

मैं इस सिंहासन की आखिरी पुतली हूँ। मुझसे पहले दूसरी 31 पुतलियों ने धर्म निभाया और उन्हें बेमौत मरना पड़ा, क्योंकि उन्होंने अपने-अपने स्वामियों को उनके स्वार्थी, अविश्वासी, अनैतिक मन्त्रीगणों एवं सभासदों से सचेत किया था और आपने उन्हें बेरहमी से तोड़ डाला।"

"मगर···।"

"मेरे स्वामी, मैं पुतली हूँ। राजा विक्रमादित्य के समय से मैं अपना फर्ज निभाती आयी हूँ कि इस सिंहासन पर बैठने वाले को मैं इसकी गरिमा बताऊँ। हाय! इस सिंहासन की गरिमा तो जाती रही। अब तो इसकी 31 पुतलियाँ ही टूट गयी हैं। फिर भी मैं अपनी परम्परानुसार आपको एक कहानी जरूर सुनाऊँगी। बाद में आप मुझे तोड सकते हैं। सुनो! एक जंगल में चंद सियार रहते थे। उनमें बडा ही संगठन था। उनसे जंगल का राजा भी खौफ खाता था। संघे शक्ति कलौ युगे···इस युग में जिसके पास संगठन है, उसके पास सब-कुछ है। सियार जब निकलते थे तो एक-साथ···दूसरे जानवर उस भीड़ से घबराते थे। दूसरों को जलन थी कि ये सियार होकर जंगल पर शासन करते हैं?···

"एक दिन एक गदरायी लोमडी को कौवा मिला। कौवे ने कहा, 'लोमडी बहन, तुम्हारे होते हुए ये सियार जंगल के राजा बने हुए हैं? इस पृथ्वी पर सबसे ज्यादा चालाक व अक्लमंद तो तुम हो।'

लोमडी ने कहा, 'मगर मैं क्या कर सकती हूँ कौवे भैया?'

'अपनी अक्ल का करिश्मा दिखाओ।'

लोमडी ने सोचकर कहा, 'अच्छा बताऊँगी।'···

"उसने काफी सोचकर एक षड्यन्त्र किया। वह सदा पाँच-सात अन्य जानवरों को लेकर सियारों के पास पहुँचती और कहती, 'ये आपके गुलाम बनना चाहते हैं।' इस तरह उसने अनेक नस्लों के जानवरों को सियारों के साथ मिला दिया और उन नये जानवरों ने हर सियार में गलतफहमी भर दी कि राजा बनने लायक तो आप हैं। गलतफहमी ने झगड़े का रूप धारण किया। एकता टूटी तो लोमडी शेर को बुला लायी और शेर ने सियारों को गुलाम बना लिया। जब उसने लोमडी को भी पंजा दिखाना शुरू किया तो लोमड़ी घबरायी। शेर ने तो यहाँ तक अत्याचार करने शुरू कर दिये कि

जब उसे भूख लगती तो वह किसी जानवर को मारकर खा जाता।···

"जानवरों में हाहाकार मचा। वे लोग लोमड़ी के पास गये और उन्होंने यह आरोप लगाया कि उसके कारण शेर जंगल का राजा बना और वह अब मनमाने अत्याचार कर रहा है।···

"लोमड़ी उदास-सी हो गयी। करे तो क्या? फिर भी उसने आश्वासन दिया कि वह कुछ करेगी, क्योंकि कल शेर मुझे भी खा सकता है।···

"एक दिन लोमड़ी आधी रात को इधर-उधर भागती हुई दिखायी पड़ी। कभी वह सियारों के पास जाती, कभी भालुओं के पास, कभी हाथियों के पास और कभी भेड़ियों के पास।···

"सुबह ही शेर ने देखा कि एक बहुत बड़ा शेर जंगल के जानवरों के साथ आ रहा है। उसके आगे-आगे लोमड़ी चल रही है।

'लोमड़ी भागकर आयी और उसने कहा, 'शेर राजा भागो ' तुम्हारे जानवरों ने विद्रोह कर दिया है···अब ये दूसरे बड़े शेर राजा को साथ लिये हुए हैं। ये सब मिलकर तुम्हारी हत्या कर देंगे।'

"बेचारा शेर भीड़ देखकर भाग गया।···

"नया शेर तो साँड था जो शेर की खाल ओढ़े हुए था। इसके बाद जंगल में अव्यवस्था फैल गयी। हर जानवर कुछ जानवरों को अपने पक्ष में करके शेर की खाल ओढ़ लेता था और राजा बन जाता था। यह तमाशा खूब चला और जंगल में अराजकता फैल गयी। जंगल के सारे जानवर दलबदलू, रंगबदलू '' लालची और अवसरवादी हो गये। नित्य ही राजा बदल जाता था।"

"तो तुम समझती हो कि मैं···?" राजा ने व्यग्रता से कहा।

पुतली खिलखिलाकर हँस पड़ी। उसने उँगली से कहा, "देख राजा अपने पीछे···!"

राजा ने पीछे देखा तो हैरान हो गया। उसके सारे मन्त्रीगण व सभासद भाग गये थे। केवल प्रधानमन्त्री खड़ा-खड़ा सुबक रहा था।

"वे लोग कहाँ गये?" राजा गुर्राया।

"वे कम्बख्त भाग गये। कहते थे कि हमें राजा अभी से आँखें दिखाने लगे, बाद में क्या गत करेंगे?"

राजा झपटकर सिंहासन पर बैठने लगा तो पुतली ने रोक दिया, "ऐसे मत बैठो! इस सिंहासन पर बिना बहुमत के कोई नहीं बैठ सकता। मैं उसे बैठने भी नहीं दूँगी।···मैं इसकी रक्षक हूँ···मैं ही नये राजा की चूड़ियाँ पहनती हूँ।···अभी मैंने तुम्हारी चूड़ियाँ पहनी ही थी पर अफसोस, मुझे फिर चूड़ियाँ बदलनी पड़ेंगी।"

उसी समय पुराना राजा नोटों की वर्षा करता आ गया। उसके साथ वे ही मंत्रीगण व सभासद थे जो थोड़ी देर पहले पिछले राजा के साथ थे।

पुतली ने पीड़ा से सिर पीटते हुए कहा, "हाय···! मुझे आज फिर वे चूड़ियाँ तोड़नी पड़ेंगी जिन्हें मैंने आज ही पहना है। एक दिन में दो बार···हे भगवान ! यह कौन-से जन्म का पाप है?"···

मेहँदी के फूल

दूर-दूर तक विस्तृत रेगिस्तान। सूना और शान्त। कहीं-कहीं पर छोटी-छोटी बेर की झाड़ियाँ और खेजड़े के वृक्ष। शेष रेत ही रेत। आग उगलती धूप और स्तब्ध पवन।

ऐसी निस्तब्धता को भग करती हुई एक बस कच्ची सड़क पर तेज रफ्तार से जा रही थी। बस में पूरे यात्री थे। ड्राइवर के ठीक पास दो बूढ़े चौधरी बैठे थे जिनके चेहरों पर जीवन के संघर्ष की प्रतिरूप झुर्रियाँ झलक रही थी। पीछे कितने अपरिचित, अनजान स्त्री-पुरुष। पुरुष रंग-बिरंगे साफे पहने और स्त्रियाँ ओढने ओढ़े हुए थीं।

सबसे पीछे की सीट पर एक राजपूत युवक मुकलावा (गौना) करके आ रहा था। उससे चार सीट आगे एक सेठ अपनी नवविवाहिता बेटी को लेकर अपने गाँव लौट रहा था। वह लड़की अद्वितीय सुन्दरी थी। उसका केसर-सा रंग केसरिया वस्त्रों में एकमेक हो रहा था और ओढ़नी पर सलमे-सितारे जड़े हुए थे जो उसके सौन्दर्य में चार चाँद लगा रहे थे।

कच्ची सड़क होने की वजह से हिचकोले जरूरत से ज्यादा आ रहे थे पर ड्राइवर अत्यन्त सजगता से स्टीयरिंग को सम्हाले हुए था।

अप्रत्याशित, जिधर बस जा रही थी उसके पूर्व की ओर धूल के बादल उड़ते हुए नजर आये। सारे यात्री शंकित हो गये। एक चौधरी ने बीड़ी सुलगाते हुए कहा, "शायद 'भटलोटिया' उठा है।"

दूसरा चौधरी जिसकी आवाज भारी थी, बोला "आँधी भी आ सकती है। इस मरुभूमि में बरखा तो कम और आँधी अधिक आती है।"

सेठ ने अपनी इन्द्रधनुषी पगड़ी को उतारकर अपने गंजे सिर पर चमकती पसीने की बूँदों को पोंछा। फिर अपनी नवविवाहित लड़की मन्नी से धीरे-धीरे कहने लगा, "सुन री लाडली, आँधी आने वाली है, जरा सचेत।

रहना।"

नवविवाहिता मन्नी ने गले मे सोने का तिमणिया और काठलिया पहन रखा था। सिर पर बडा बोर था। दोनो कानो मे बालियाँ झलमला रही थी। नाक मे काँटा था। पाँवो मे चाँदी के भारी-भारी बिछवे।

बाप का सकेत पाकर मन्नी ने अपने ओढने से अपने शरीर को ढँक लिया।

मुकलावा करके आने वाला राजपूत अपनी कमर मे लटकती तलवार को यूँ ही देख रहा था। उसके समीप बैठा उसका मित्र अपने हाथ की कटार से खेल-सा रहा था।

धूल के बादल और गहरे हुए। वे बस के समीप आने लगे। यात्रियो की आँखें उस ओर जम गयी। ड्राइवर ने बस की रफ्तार को और तेज कर दिया।

तभी गोली की आवाज सुनाई पडी। गोली की आवाज के साथ यात्रियो ने देखा कि धूल के बादलो को चीरती हुई एक जीप आ रही है। जीप मे चार आदमी बैठे है जिनके चेहरे कपडो से ढँके हुए है।

एक यात्री चिल्लाया, "डाकू! डाकू आ गये हैं!"

सारी बस मे सनसनी फैल गयी। डाकू शब्द फुसफुसाहट मे बदल गया। सेठ ने जोर से कहा, "बस को और तेज करो।"

एक गोली बस के अगले शीशे के ऊपर की ओर टकराकर हवा मे उड़ गयी। ड्राइवर के हाथ मे स्टीयरिंग छूट गया। उसने घबराकर गाडी रोक दी। चन्द क्षणों मे ही जीप बस के आगे थी। अब यात्री जीप मे बैठे सभी लोगो को अच्छी तरह देख सकते थे। बस मे मृत्यु-सा सन्नाटा छा गया था। लोग एक-दूसरे को शकित दृष्टि से ऐसे देख रहे थे जैसे वे पूछ रहे हों कि अब क्या होगा?

जीप मे बैठे धाडेती उतर आये थे। ड्राइवर के अतिरिक्त पाँच लोग और थे। एक के हाथ मे तनी हुई बन्दूक थी।

बन्दूकधारी ने गरजकर कहा, "तुम लोग अपनी जान की खैर चाहते हो तो चुपचाप बैठे रहो। कोई भी हिलेडुले नही!"

यात्रियों की साँसें गले-की-गले में रह गयीं।

बन्दूकधारी ने फिर अपना परिचय दिया, "मैं डाकू तेजसिंह हूँ। मैं तुम लोगो मे से किसी को कुछ भी नही कहूँगा...मैं सिर्फ इस सेठ की बेटी को लेने आया हूँ।"

शेष यात्रियों ने राहत का अनुभव किया लेकिन सेठ और उसकी नव-परिणीता बेटी कांप उठी। लडकी मन्नी अपने बाप से चिपट गयी।

तेजसिंह उन दिनों राजस्थान का कुख्यात डाकू था। उसने कई जानें ली थी और अब वह सच्चे डाकुओं की मान-मर्यादा का परित्याग करके नीच-से-नीच काम करने पर उतारू हो गया था। चूंकि दूसरे डाकू अपने पेशे को नैतिकता और उसके धर्म को लेकर चलते थे, इसलिए उन्होने तेजसिंह को स्पष्ट कह दिया था कि अब वे उसके साथ नही रह सकते। लडकियों की इज्जत से खेलना उनका धर्म नही है।...पर वासना में लिप्त तेजसिंह ने उनकी कोई परवाह नही की। तेजसिंह में एक राक्षस की सारी प्रवृत्तियां उत्पन्न हो गयी थी।

तेजसिंह एक बार फिर सिंह की भांति गरजा, "सेठ, अपनी बेटी को मेरे हवाले राजी-खुशी कर दे।"

मन्नी ने अपने बाप को मजबूती से पकड़ लिया। दोनों थर-थर कांपने लगे। दोनो के चेहरे वर्षों से बीमार की तरह पीले पड गये थे।

तेजसिंह की आंखो में रक्तिम डोरे उतर आये। वह उस खिडकी के पास आकर बोला, "सुना नही सेठ? लड़की को मेरे हवाले करो वरना मैं गोली मारता हूँ।"

लडकी क्रन्दन करती हुई अपने भयभीत बाप से और लिपट गयी। रुआंसे स्वर मे बोली, "नही बापू, नहीं! मुझे इसके हवाले न करना... बापू...!"

तेजसिंह चिल्लाया, "बन्ना, जाकर लड़की को ले आ।"

तेजसिंह का साथी अपने सरदार का आदेश पाकर बस मे घुसा। तेजसिंह ने तत्काल एक हवाई फायर किया। सारे यात्री कलेजा पकडकर बैठ गये। उन्हें महसूस हुआ कि गोली उनके सीने में दाग दी गयी है। सबकी आंखों में आशंकित मृत्यु का भय और जड़ता उभर उठी।

बन्ना ने भीतर घुसकर बाप से लिपटी बेटी को छुडाना चाहा। बाप

ने काँपते हाथों को जोड़कर प्रार्थना की, "माई-बाप ! मेरी बेटी को छोड़ दीजिये, मैं आपको सारे जेवर दे दूँगा।"

परन्तु हवस में अंधे तेजसिंह को उस लड़की के सिवा कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था। जब बाप ने लड़की को नहीं छोड़ा, तब तेजसिंह ने बन्दूक के पिछले हिस्से से सेठ के सिर पर चोट की। आर्त्तनादों के बीच लड़की घसीटकर बाहर निकाल ली गयी। सब यात्री निर्जीव-से बैठे रहे। वे गूँगे-बहरे बनकर अपनी सीटों से चिपक गये थे। लग रहा था कोई भी नहीं है इस बस में।

लड़की अब भी चीख-चिल्ला रही थी। बन्ना उसे अपनी बाहों में ले चुका था। तभी मुकलावा करके लौट रहे राजपूत युवक की पत्नी थोड़ा-सा घूँघट हटाकर बस में बैठे हुए लोगों से तेज स्वर में बोली, "आप सब चुल्लूभर पानी में डूब मरिए। आपके सामने एक लड़की को डाकू उठाकर ले जा रहे हैं, और आप हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं। थू है आप सब पर।"

अचानक इस तेज फटकार से बस में तनिक हलचल हुई। राजपूत युवक अपनी पत्नी को प्रश्नवाचक दृष्टि से देखने लगा। शायद वह सोच रहा हो कि इसे यकायक यह क्या हो गया है? यह हमारी कौटुम्बिक परम्पराओं को तोड़कर क्यों हुंकार भर रही है? सबके सामने क्यों बोल रही है?

राजपूत-पत्नी की आँखों से अंगारे बरस रहे थे। उसने थोड़ा-सा घूँघट खींचकर अपने पति से पुनः कहा, "मैं आपसे क्षमा माँगती हूँ, कुँवर सा! आप मुझे मेरी इस गलती की बाद में कोई सजा दे दीजिएगा, किन्तु कुँवर-सा, आज मुझे मालूम हो गया कि आपकी रजपूताई घास चरने चली गयी है। जो क्षत्रिय गौ, ब्राह्मण, अबला का रक्षक कहलाता था, जिन पर हँसते-हँसते वह उत्सर्ग हो जाता था, उसी के सामने एक लड़की मुक्ति की भीख माँग रही है और आप पत्थर की तरह चुपचाप बैठे हैं? क्या आपका खून पानी हो गया है? वरना क्या मजाल थी कि एक सच्चे राजपूत के होते हुए कोई चोर-डाकू किसी बाप से उसकी बेटी छीनकर ले जाय।"

अपनी पत्नी की तेजस्वी ललकार पर राजपूत खड़ा हो गया। उसके सिर पर लाल रंग का साफा था। उसकी बाँकड़ली मूँछों पर उसका हाथ

ताव देने चला गया। जोश मे उसके नथुने फड़कने लगे। फिर वह अपनी तलवार की मूठ पर हाथ रखकर इतना ही बोल पाया "कुँवराणी !"

कुँवराणी पूर्ववत् स्वर मे बोली, "आज सारे इतिहास को आग लगानी पड़ेगी। राजपूतों के शौर्य को मिटाना होगा। वरना एक राजपूत के होते हुए डाकू किसी लड़की को उठाकर ले जाय। छिः-छिः !"

राजपूत चीख पड़ा, "क्षत्राणी, चुप रहो !"

"मैं चुप नही रहूँगी। मैं कहूँगी कि आप सब मरदों को चूड़ियाँ पहन लेनी चाहिये।" उसने फटकारते हुए कहा।

सेठ की बेटी को जीप मे डाल दिया गया था। वह क्रन्दन करती हुई बेहोश हो गयी थी। खूँख्वार डाकू तेजसिंह बन्दूक लेकर उसके समीप बैठ गया। उसने ड्राइवर को आज्ञा दी, "जीप रवाना करो।"

पर जीप घर्रऽऽ-घर्रऽऽ करके रह गयी।

तेजसिंह ने बन्दूक के पिछले हिस्से से ड्राइवर को हल्का-सा धक्का देकर कहा, "जीप चलती क्यों नही ?"

कुँवराणी ने सचमुच अपने हाथ की चूड़ियाँ खोलकर अपने पति की ओर बढ़ा दी, 'लीजिए, इन्हें पहनकर आप बैठिए, और तलवार मुझे दीजिए।"

राजपूत ने आवेश मे काँपते हुए अपने स्वर पर काबू करके कहा, "कुँवराणी, मैं राजपूत तो वही हूँ पर समय बदल गया है।"

"समय कैसा बदल गया ? राजपूत के लिए दूसरों की रक्षा करने का कोई समय नही होता।"

तेजसिंह पागलों की तरह चीखा, "जीप चलाओ !"

राजपूत ने किंचित् व्यथित स्वर मे कहा, "जरा होश मे आकर बात करो। हम अभी गौना करके आये हैं। तुम्हारे हाथों की मेहँदी का रंग भी अभी नही उतरा है। घर पर ठकुराणी सा और ठाकुर सा हमारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। ऐसे समय हमें मत ललकारो !"

जीप-ड्राइवर ने कहा, "सरदार, बैटरी बैठ गयी है।"

तेजसिंह चीखा, "क्या बकते हो ?"

"सरदार, सच कह रहा हूँ।"

रजपूतानी ने हाथ जोडकर विनीत स्वर में कहा, "आपके माता-पिता जब यह सुनेंगे कि उनका बेटा एक लड़की की रक्षा नहीं कर पाया, तो वे जीते जी मर जायेंगे।"

"स्थिति को देख लो। पल-भर मे तुम विधवा हो सकती हो!"

"विधवा?...कुंवर सा, विधवा तो मैं तब भी हो सकती हूँ जब आप खेत मे काम कर रहे हो और आपको कोई काला डस जाय! आप जोर से खिलखिलाकर हँसें और हँसते ही परलोक सिधार जायें। पर यह मृत्यु *कितनी महान् और आदरमयी होगी! यदि आपने उस अबला की रक्षा नहीं* की, तो मैं समझूंगी कि मैं जीते जी विधवा हो गयी हूँ।"

राजपूत अब अपने-आपको नहीं रोक सका। वह बावला-सा हो गया। *उसके नेत्र अंगारे-से दहकने लगे। वह तड़पकर बोला, "तुम राजपूत के* जौहर देखना चाहती हो?"

"मैं उसे अपने धर्म-पथ पर चलते हुए देखना चाहती हूँ। मैं चाहती हूँ, वह *अपने अतीत को न भूले। वह अपने शौर्य और कर्तव्य को न भूले।"*

उसी समय एक कार आ गयी। तेजसिंह ने अपने ड्राइवर को तत्परता से कहा, "इस कार की बैटरी लगाओ।" उसने हाथ के इशारे से कार को रोक दिया।

राजपूत ने अपने साथी की कटार ली। भूखे बाज की तरह वह बस से उतरा।

तेजसिंह बन्दूक लिये हुए खड़ा था। राजपूत ने दूर से *अपनी कटार* फेंकी, कटार तेजसिंह की पीठ पर जा लगी। तेजसिंह ने बन्दूक तानी। राजपूत तलवार निकालकर उस पर झपटा। फायर! राजपूत का एक हाथ *जख्मी हो गया। उसने उसकी कोई परवाह नहीं की, वह तेजसिंह पर टूट* पड़ा। उसको इस तरह टूटते हुए देखकर राजपूत का साथी भी लपका। तेजसिंह दूसरा फायर करना चाहता ही था कि उसके साथी ने बन्दूक को *पकड़कर ऊपर की ओर कर दिया।*

राजपूत ने तलवार के वार करने शुरू कर दिए। जिस डाकू के तलवार लग गयी, वह वहीं पर ढेर हो गया।

लेकिन तेजसिंह *बलिष्ठ और साहसी था। उसने जोर के धक्के से*

राजपूत के साथी को गिरा दिया। बन्दूक को उस पर तानकर जैसे ही फायर करना चाहा, वैसे ही राजपूत ने तेजसिंह पर तलवार का वार कर दिया। तेजसिंह को एक बार धरती घूमती हुई लगी। उसकी आँखों के आगे अँधेरा छा गया। लेकिन वह खूँख्वार भेड़िया फिर भी सँभला। पूरे जोश के साथ वह राजपूत पर टूट पड़ा।

तभी रजपूतानी जोर से चिल्लायी, "आप सब बस में बैठे-बैठे क्यों डर रहे हैं ? जाइए न, उनकी मदद कीजिए ! जाइए···!"

उसकी ललकार पर एक जाट और ड्राइवर कूद पड़े। ड्राइवर के हाथ में एक लोहे की हथौड़ी थी। जाट ने आयी हुई कार का हैण्डिल खोल लिया। दोनों तेजसिंह पर टूट पड़े।

फायर !

चीखें।

लोगों ने देखा कि राजपूत एक ओर लुढ़क गया है। अब रजपूतानी अपने को नहीं रोक सकी। बेतहाशा अपने पति की ओर लपकी। पहली बार लोगों ने उस वीरना की तेजस्वी महान् नारी के दर्शन किये। उसका चेहरा अद्भुत ओज से दीप्त था। आँखें बड़ी-बड़ी और साहस की प्रतीक थीं। राजपूतानी को उतरते देखकर बस की भीड़ डाकुओं पर टूट पड़ी। डाकू तेजसिंह भी बेहोश हो गया था। उसके साथी बस के लोगों के कब्जे में थे।

राजपूत घायल अवस्था में तड़प रहा था। वह अस्फुट स्वर में कह रहा था, "पानी !···पानी···!"

रजपूतानी ने व्याकुल स्वर में कहा, "पानी !"

तुरन्त पानी लाया गया। पानी की बूँदें मुँह में जाते ही राजपूत ने आँखें खोलीं।

उस समय तक सेठ भी सचेत हो गया था। जब उसे यह मालूम हुआ कि उसकी बेटी की रक्षा के लिए एक वीर ने डाकुओं से संघर्ष किया है, तब वह राजपूत की ओर लपका।

मन्नी को भी पानी छिड़ककर सचेत कर लिया गया था; वह भी राजपूत के पास आ गयी थी।

राजपूत ने स्नेह-विगलित स्वर मे कहा, "कुँवराणी, वह लड़की कहाँ है ?"

कुँवराणी ने सजल नयनो से देखा। तभी सेठ ने कहा, "यह रही मन्नी, मेरी बेटी, बिल्कुल ठीक है। आओ बेटी, इधर आओ, तुझे तेरा भैया पुकारता है।"

मन्नी राजपूत के पास आयी। राजपूत का एक हाथ बिल्कुल घायल हो चुका था। एक गोली सीने मे लग गयी थी। लहूलुहान दूसरा हाथ भी था, किन्तु दूसरे हाथ से मन्नी को आशीष दिया। उसके सिर पर हाथ रखकर धीमे धीमे बोला, "अच्छी है न बहन ?"

मन्नी से कुछ बोला भी नही गया। वह फफक पडी। बाद मे राजपूत ने रजपूतानी की ओर देखा। उससे वह टूटते हुए स्वर मे बोला, "कुँवराणी ! "मैंने तुम्हारी बात पूरी कर दी, वह लडकी अच्छी है।"'अच्छा कुँवराणी, भूल-चूक माफ करना। मेरे माँ-बाप की जिम्मेदारी अब तुम पर है। वे बहुत बूढे हो चुके हैं।"

कुँवराणी दहाड मार बैठी, "नही, नही ! ऐसा नही हो सकता ! इन्हें जल्दी हस्पताल ले चलिए।"

राजपूत के चेहरे का ओज निस्तेज होता गया। वातावरण मे मृत्यु की खामोशी और सन्नाटा छाता गया। सारे यात्रियों की आँखें नम थीं। समीप ही तेजसिंह अचेत पडा था। जो कार आयी थी, उससे राजपूत को हस्पताल ले जाने और पुलिस को खबर करने की व्यवस्था की गयी।

लेकिन राजपूत का रक्त बहुत बह चुका था। उसने एक बार फिर कुँवराणी की ओर देखा। उसके हाथो मे मेहँदी के फूल महक रहे थे। राजपूत अपनी आँखो से उन मेहँदी के फूलों को देखता रहा जो सुहाग के चिह्न थे। रजपूतानी विपुल वेदना से तडप रही थी। वह एक बार फिर चीखी, "इन्हे जल्दी से हस्पताल ले चलिए।"

लोगों ने राजपूत को उठाना चाहा। उसने हाथ से न उठाने का संकेत किया। उसका चेहरा और स्याह हो गया। उसने एक बार फिर मेहँदी-रचे कुँवराणी के हाथों को देखा। मुस्कराया। उन्हें चूमा। कुँवराणी दर्द से काँप रही थी। उसने काँपते स्वर में कहा, "आप बिल्कुल ठीक हो जायेंगे,

इन्हें जल्दी से हस्पताल ले चलिए।"

और राजपूत ने कुंवराणी के हाथों को अपने सीने से लगा लिया। उसकी आँखें फट गयीं। उसके हाथ फैल गये। कुंवराणी और सारी उपस्थिति सुबक पड़ी।

कुंवराणी ने अपने हाथ उठाये। हाथों पर बने मेहँदी के फूल खून से वीभत्स धरातल की तरह सपाट बन गये थे, जैसे हाथों पर कुछ था नहीं, सिर्फ रक्त-ही-रक्त।

प्रतिरोध

कुछ ऐसे पोस्टर्स होते हैं जो हमें दिखलायी नही देते पर वे दीवार, चौराहे, दोराहे और खम्भों पर चिपके रहते हैं और लोग उन्हें ताज्जुब-भरी नजर से पढते हैं।

एक ऐसा ही पोस्टर नगर की प्रिंसिपल महोदया शिवानी के बारे मे हर जगह चिपका हुआ था। 'शिवानी का पर-पुरुष 'स्वरूप' के साथ प्रेम-चक्कर।'

तो क्या 'शिवानी' 'पागल' हो गयी है? उसे एकायक यह क्या पागलपन सूझा कि अपने पति 'प्रखर' से सम्बन्ध विच्छेद करके उसने अपने से तीन-चार साल छोटे 'स्वरूप' मे खुल्लमखुल्ला प्रेम करना शुरू कर दिया? कभी स्वरूप उसके यहाँ बैठा रहता तो कभी वह उसके यहाँ। कभी साथ-साथ पिकनिक पर जाते हैं और कभी सिनेमा देखते हैं। जब कभी भी उसका व्यथित पति प्रखर आता है तो वह उसे कठोर स्वर मे कहती है—"मेरे और तुम्हारे बीच के सारे नाते-रिश्ते मर चुके हैं।"

"विवाह का बन्धन इतना कच्चा नही होता कि सरलता से टूट जाय!" प्रखर कहता है—"यह आत्मा का बन्धन है, जन्म-जन्मान्तर का रिश्ता है।"

वह अपने पति की बात पर खिलखिलाकर हँस पडती। दोहरी होकर कहती, "ये बहुत ही सड़े हुए बासी शब्द हैं। इनके एक-एक अक्षर में दकियानूसीपन की बू आती है।"

"मैं अदालत के दरवाजे खटखटाऊँगा।"

"न्यायाधीश तुम्हें पागल समझेंगे। वे भी सोचेंगे कि यह पति नही कोई जोक है, जो बस चिपके रहना चाहता है।"

"आखिर तुम्हें मुझसे एकाएक इतनी नफरत क्यो हो गई? जबकि

तुमने सोच-समझकर मुझसे विवाह किया था ?"

"दिल ही तो है !" शिवानी ने कहा, "आजकल मुझे तुम्हारा श्याम-वर्ण तवे का उल्टा पासा लगने लगा है।···सच, तुम्हारे पसीने की बदबू से मेरा दिमाग भिन्ना जाता है।··· प्यार और नफरत तो कुछ दिनों के सहवास के बाद ही मन मे जन्मते हैं। प्रखर ! शादी मैंने नहीं, मेरे पिता जी ने करायी। वह एक ऐसी स्थिति थी कि मैं न नही कर सकी, पर अब मैं तुम्हारे साथ एक पत्नी के रूप मे एक पल भी नही गुजार सकती। तुम रद्दी किस्म के आदमी हो। हमारी भलाई इसी में है कि हम तलाक ले लें।"

"यह नही हो सकता।"

"फिर तुम टेंशन में रहो।"

यह सही भी था कि शिवानी किसी कीमत पर प्रखर से समझौता करना नही चाहती थी। इस सन्दर्भ मे उसे उसकी खास सहेली ने समझाया भी था, "यह बात तुम्हारी इमेज खराब कर देगी। लोग इधर ऐसी-ऐसी चर्चाएँ करते हैं कि मैं तुम्हें बता नही सकती।"

वह लापरवाही से बोली, "वे कैसी चर्चा कर रहे हैं, यह मैं जानती हूँ। चर्चा के साथ-साथ वे मुझे आवारा, बदचलन और लफंगी भी कहते हैं, पर मुझे इन कीड़ों की कोई परवाह नहीं। मुझे जिन बातों मे सुख-संतोष मिलेगा, मैं वही करूँगी। मुझे उनसे कोई सती-यती का खिताब नही लेना है। मैं अब प्रखर को कतई नही सह सकती।" वह एक पल चुप रही, पुनः बोली, "तुम खुद अपने कलेजे पर हाथ रखकर कहो कि मुझजैसी सुन्दर, गोरी और चदनवदनी लड़की उस खसियारे टाइप के आदमी के साथ ताउम्र बँधी रह सकती है ? अरी अनु, यह अपने-आप पर जुल्म नहीं होगा ?···फिर यह कोई जरूरी है कि जो रिश्ते बन गये है उन्हें जबरदस्ती निभाया जाय ? मैं यदि उससे ऊब गयी हूँ या मैं उसके साथ रहना नही चाहती हूँ तो कौन-सा भारतीय धर्म मर जायेगा ? कौन-सी भारतीय संस्कृति-सभ्यता पर मैल लग जायेगी ? हमारे संबधो को अब नये चोगे की जरूरत है। धर्म, रूढियों, सभ्यता और संस्कृति की मोटी जैकटें फट चुकी हैं, असह्य हो गयी हैं। उनके भीतर पसीना-पसीना ही रहता है और पसीना

बदबू देता है । पगली ! समय नंगा होने का है, नंगे होकर धूप-स्नान करने का, ताकि हर बदबू पवित्र धूप मे सूख जाय ।"

वह झुँझलाहट मे अपना सिर हिलाकर तड़पकर बोली, "तुम्हे क्या हो गया शिवानी ? क्या तुम्हारे भीतर कोई प्रेत घुस गया है ?"

"मेरे भीतर कौन घुस गया है, मुझे नही मालूम । पर मैं इतना कह सकती हूँ कि मैं अब प्रखर के साथ नही रहूँगी । अब तो मुझे उसकी हर चीज से एलर्जी है, विशेषत: उसके काले रग से ।"

"रग से तो गुण बडा होता है । काले लोगो का संसार तो अलग नही होगा ।"

"हाँ, उनका ससार अलग नही हो सकता, पर जब तक गोरे पुरुष अपनी काली बीवियो के साथ दुर्व्यवहार करना बन्द नही करेंगे तब तक ऐसी ही स्थितियाँ आती रहेंगी ।"

अनु चली गयी ।

तब सांझ क्षितिज पर लाल, पीली, उजली चूनरी ओढे सृष्टि की ओर आने की चेष्टा कर रही थी । वह ज्यों-ज्यों सृष्टि की ओर आ रही थी, उसकी रग-बिरगी चूनरी काली होती जा रही थी । धीरे-धीरे वह राजस्थानी काली 'लाल-सी' हो गयी । सृष्टि पर एकदम घुप अँधेरा छा गया ।

अपने फ्लैट के शयन-कक्ष मे शिवानी पलँग पर अर्धशायित थी । वह सोच रही थी कि इतना वावेला मचानेवाली स्थिति के पीछे किसका हाथ है ?···इसी प्रखर का ?···इसी निर्मम प्रखर का ?

यदि दिल्ली मे इला नही मिलती तो उसे मालूम ही नही पडता कि यह इन्सान कितना बहुरूपिया और चालाक है । इसने अपनी सूरत पर कितने चेहरे लगा रखे हैं ?

वह स्मृतियो मे खो गयी ।

दिल्ली में अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी लगी हुई थी । तब वह अपनी चद छात्राओं के साथ प्रदर्शनी देखने गयी थी । जब वे सब रशियन पडाल मे घूम रही थी कि एकाएक महसूस हुआ कि किसी ने उसके कधे पर हाथ रखा है । उसने हल्के रोमांच के साथ पीछे की ओर देखा । वह खुशी में

उछल पड़ी, "हाय, इला तुम ? कितने सालों के बाद मिली हो ? क्या तुम दिल्ली में हो ?"

"हाँ, मैं पिछले पाँच साल से यहीं पर हूँ। पंजाब नेशनल बैंक में मैं क्लर्क-कम-टाइपिस्ट हूँ।"

"गुड।" शिवानी ने कहा, "भई, आज मजा आ गया। यहाँ आना सार्थक हो गया। और डियर, क्या हाल-चाल है ? कैसी गुजर रही है ? शादी तो कर ली होगी ? बाल-बच्चे तो भगवान की कृपा से आधे दर्जन हो गये होंगे ?···अरे, इसमें चौंकने की क्या बात है ? अपने देश की धरती बड़ी उपजाऊ है। कितनी नदियाँ बहती है ?" शिवानी आनन्द के अतिरेक में खोती जा रही थी। हँसी बार-बार उसके चेहरे को ढाँप रही थी।

इला ने जरा मुस्कराते हुए कहा, "तुम्हारे बोलने की आदत बदस्तूर है। जब बोलती हो तो तूफान की स्पीड से।" उसने साँस लेकर पुनः कहा, "सुनो, तुम कल मेरे यहाँ आओ। साथ खायेंगे-पीयेंगे, फिर बातें होंगी।"

"पर तुम रहती कहाँ हो ?"

"मैं तुम्हें तुम्हारी ठहरने की जगह से ले लूँगी। कहाँ ठहरी हो ?"

"फतहपुरी के ताज होटल में।"

"ओ-के···वी विल मीट टुमारो मार्निंग !"

"आफकोर्स !"

दोनों ने बड़ी गर्मजोशी से विदा ली।

दूसरे दिन सुबह ही इला पहुँच गयी। शिवानी तैयार बैठी थी। साड़ी बदलकर उसने अपनी छात्राओं को जरा कठोर स्वर में आज्ञा दी, "तुम सब पिक्चर देखकर सीधी होटल आ जाओगी। इधर-उधर मटरगश्ती नहीं करोगी। यह जयपुर नहीं, दिल्ली है, समझी ?"

छात्राओं ने सिर्फ सिर हिला दिये।

शिवानी और इला ने एक स्कूटर लिया। वे दोनों शक्तिनगर आ गयीं।

शक्तिनगर में दो कमरों का फ्लैट ! साधारण ढंग से सजा हुआ।

उसमें इला और उसकी छोटी बहन सरला रहती थी, एक नौकरानी के साथ।

इला ने सरला से शिवानी का परिचय कराया, "सरला, यह मेरी जिगरी दोस्त है। हम जोधपुर मे साथ-साथ पढती थी।"

सरला आम लडकियो से ज़रा गम्भीर लड़की थी। उसने नमस्कार कर दिया। वह अपने कमरे मे चली गयी। इला ने अपनी नौकरानी से कहा, "माँ जी, ज़रा दो प्याले कडक चाय, ज़रा चीनी भी कड़क।"

शिवानी हँस पडी। उसकी जाँघ पर थाप देती हुई बोली, "तुझे मेरी सब आदतों की अच्छी तरह याद है। बातें भी। चीनी कड़क···।" वह मुस्कराने लगी। चुपचाप।

"भई, तुम्हारे फ्लैट को देखने पर यह तो पता चल गया कि हमारी डियर अभी दोपाया से चौपाया नही हुई है।"

वह उदास हो गयी। एक अत्यन्त ही कोमल उदासी···एकदम बिल्ली के बच्चे-सी जो लपककर उसके चेहरे पर आ बैठी हो और अजीब से पंजे मार रही हो!

नौकरानी चाय बनाकर रख गयी थी। शिवानी ने घूँट लेकर कहा, "इला··· "

"इला नही, यार, तुम तो मुझे सदा यार ही कहती थी न?" इला ने शिवानी को याद दिलाया।

"हाँ-हाँ यार,······हाँ यार, चाय अपने टेस्ट के अनुकूल बनी है।" शिवानी ने कहा, "बता, क्या-क्या गुज़री और कैसे गुज़री?" उसने एक दीर्घ नि:श्वास छोडा। बोली, "शिब्ब! मैं एक बार चौपाया तो बन गयी थी पर बदकिस्मती से फिर दोपाया बन गयी, यानि कि मैं परित्यक्ता हूँ। आज से साढ़े पाँच साल पहले मेरी शादी हुई थी। रिश्ता मेरे डैडी ने तय किया था। लड़के की तरफ से लडके के पापा ने। शादी के अवसर पर मेरे डैडी ने नक्द भी दिया क्योंकि यह बताया गया था कि लड़का अच्छा बिजनिसमैन है हालाँकि वह नौकर था—एक प्राइवेट कम्पनी मे। उसका रंग काला था और उसमें भावुकता नाममात्र को भी नही थी। उसमें एक अजीब-सी आदत देखी कि वह पैसो के मामले मे बहुत ही घटिया था। मैं

उन दिनों सर्विस में लग गयी थी इसलिए वह हर पहली तारीख को मेरे दफ्तर आ जाता और मुझसे पैसे ले लेता। वह उन पैसों का क्या करता था, मुझे नहीं मालूम। हाँ, घरेलू खर्च में कटौती की बात अवश्य करता रहता था और उसे लेकर मुझसे झगड़ा भी कर लेता था। उसने मेरे डैडी से भी लगभग पाँच-सात हजार रुपये ले लिये···व्यापार करने के नाम पर। लेकिन जब मेरे डैडी ने उसकी फरमाइश पूरी करनी बंद कर दी तो वह उससे नाराज रहने लगा और बात-बात पर मुझे ताने मारने लगा। कहने लगा, 'मेरे पिता ने तेरी जैसी काली भैंस को मेरे गले बाँधकर मेरी जिन्दगी बरबाद कर दी है। मैं अब तुझे नहीं सह सकता। यह मेरी जिंदगी का सवाल है।' इसके बाद वह मेरे साथ जानवर का-सा व्यवहार करने लगा। जानवर का व्यवहार बदलते-बदलते जल्लाद का-सा व्यवहार हो गया। ··वह झूठ-मूठ बहाने बनाकर पीटने लगा। यहाँ तक कि उसने मुझे छिनाल कहकर बदनाम करना शुरू कर दिया। मैंने उसे बार-बार समझाया कि वह मेरे साथ ऐसा सलूक न करे, पर वह अड़ा रहा और आखिर उसने मुझे मार-पीटकर घर से निकाल दिया। मैं कुछ दिन पीहर रही। लेकिन वह कमीना तनख्वाह के दिन मेरे दफ्तर फिर आ गया और मुझे अपने घर ले आया। अपनी गलती के लिए माफी माँगने लगा। मुझे क्या पता कि वह गिरगिट सिर्फ मेरी तनख्वाह हड़पने के लिए नाटक कर रहा है। वह रात को मेरे साथ रहा। उसने अपनी जिस्मानी भूख मिटायी। जब मुझे नींद आ गयी तब उसने मेरे पर्स में से सारी तनख्वाह के रुपये निकाल लिये और सुबह की चाय पर झगड़ा शुरू कर दिया। वह चाय का एक घूँट लेकर बोला, 'यह चाय है या कोई जहर? जरूर इसमें तुमने जहरीली चीज मिलायी है।'···

"मैं हतप्रभ रह गयी। उसकी ओर टुकुर-टुकुर देखने लगी।···

"'मेरी ओर क्या घूर-घूरकर देख रही है? मैं जानता हूँ कि तू मुझे मारना चाहती है!' उसने इतना कहकर प्याला फेंक दिया और मेरा सिर पकड़कर दीवार से टकराने लगा। मैं उसकी मार नहीं सह सकी। उससे लड़ पड़ी। उसने मुझे घर से निकाल दिया। इसके बाद मेरे घर-वालों या परिचितों ने बहुत चेष्टाएँ की, पर वह मुझे अपने पास रखने के

लिए तैयार नहीं हुआ, उल्टा लोगों को कहता रहा कि यह मुझे जहर देकर मारना चाहती है।...आखिर हम दोनों अलग हो गये और तलाक ले लिया।...पता नहीं वह कहाँ चला गया! मैं नहीं जानती।"

"उसका नाम क्या था?"

"प्रखर।"

"क्या?" उसकी आँखें फट गयीं। उसे लगा कि किसी ने उसे एकदम निचोड़ लिया है।

"कोई चित्र है उसका?"

"हाँ।" इला उठकर एक एलबम ले आयी। उसमें से उसने प्रखर का चित्र दिखाया।

वह था शिवानी का भी पति—प्रखर।

उसकी अजीब स्थिति हो गयी। एकदम जड़! मन बिखरने लगा। फिर भी उसने अपने को सँभाला। सहानुभूति-भरे स्वर में बोली, "यह तुम्हारे साथ बड़ी ट्रेजडी हुई।"

"मैं नहीं जानती थी कि वह इतना कमीना होगा। उसने मेरी प्रेस्टीज बहुत ही खराब की है।" इला ने बताया।

"ईश्वर उसे इसका दण्ड देगा।" शिवानी धर्मोपदेश की तरह बोली। इसके बाद वह आन्तरिक संघर्षों में खो गयी। इला भी अजनबी-सी उसके पास बैठी रही। भोजन के समय भी उन दोनों के बीच अजनबीपन रहा।

शिवानी और उसकी छात्राएँ लौट आयीं। वे ट्रेन के लेडीज कम्पार्टमेंट में बैठी थीं। शिवानी को प्रखर की एक-एक हरकत याद आने लगी। वह आज भी उसकी तनख्वाह को हड़प जाना चाहता है पर वह उसे दाव नहीं देती। फिर वह उसके मुकाबले में अपने को सभी दृष्टियों से हीन समझती है।...पर प्रखर ने उसे यह क्यों नहीं बताया कि वह तलाकशुदा है? उसने उसे और उसके पिता को तो यही कहा था कि वह कुँआरा है, उसका बिजनिस है।...बाद में शिवानी को पता चला कि वह सिर्फ सर्विस करता है। उसने उसके पिता को भी झाँसा दिया था। ट्रेन में जो चोरी हुई थी आज उस चोरी में भी उसे कोई चाल लगी जिसमें

शिवानी के लगभग पन्द्रह हजार के जेवर चले गये थे। आज उसे लगा कि प्रखर ने ही वे जेवर चुराये थे।...उसका मन प्रखर के प्रति घृणा से भरने लगा। उसे वह बात याद आयी जब प्रखर घबराया हुआ उसके पास आया था।

"शिवानी, मुझे बचाओ ! मुझे बचाओ।" वह शिवानी की गोद में लगभग लुढ़क गया।

"क्या बात है ? तुम इतने घबराए हुए क्यों हो ? बोलो तो सही !"

"क्या बोलूँ ?" प्रखर अत्यन्त दीनता से बोला। उसकी पलकों के कोर भीग गये थे।

"कुछ बताओ, वरना मेरा भी कलेजा बैठने लगा है।" उसने अधीर स्वर में कहा।

"साहब ने मुझे तीन हजार रुपये किसी चीज की परचेज़िग के लिए दिये थे, वे मेरी जेब में से चोरी चले गये है। कही ऐसा न हो कि पुलिस मुझे पकड़ ले और मेरी इज्जत धूल में मिल जाय।"

शिवानी गम्भीर हो गयी। पूछ बैठी, "ऐसे कैसे चोरी चले गये ?"

"चोरी कैसे चले गये यदि इसका मुझे पता चल जाता तो मैं भला जेबकतरे को पकड़ नहीं लेता ?" प्रखर थोड़ा-सा रोष में भरकर बोला, "अब तो तुम मुझे कहीं से तीन हजार रुपये लाकर दो।"

शिवानी को याद है कि उन तीन हजार रुपयों के लिए घण्टो मारी-मारी फिरी थी। छोटे-छोटे लोगों के सामने हाथ फैलाये थे। कितनी शर्मिंदगी उठानी पड़ी !

और आज शिवानी सोच रही थी कि शायद धन के लालची ऐसे आदमी ने उसमें भी कोई फ्राड किया हो।

वह संघर्षों के बीच घर पहुँची।

आज घर पहुँचते ही उसने प्रखर के साथ बड़ी आत्मीयता का व्यवहार किया। दूसरे दिन उसने उसकी अनुपस्थिति में उसकी व्यक्तिगत अटैची को खोला।

वह अटैची में भरे हुए कागज़ात को देखती रही। उनमें तीन पास-बुकें मिलीं, अलग-अलग बैंकों की। उनमें लगभग तीस-पैंतीस हजार

जमा थे। उन रुपयों में वे तीन हजार और जेवरों की चोरी के बाद के तेरह हजार रुपयों की एक-एक एण्ट्री भी थी।

उसका मन आवेश और घृणा से भर गया। अभी कुछ दिन पहले शिवानी को जमीन का एक प्लाट खरीदना था, उसके लिए पाँच हजार रुपयों की जब अतिरिक्त आवश्यकता पड़ी तो इसी प्रखर ने कितनी प्रवीणता से अभिनय करके उसकी कसम खाकर कहा था कि उसके पास एक पैसा भी नहीं है। ओह, कितना ओछा है यह।···वह चैक-बुकें देखने लगी। संयोग से एक चैक पर उसके साइन थे। उस बैंक में से वह सारा रुपया निकाल लायी चुपचाप।

शिवानी का मन प्रखर के प्रति अरुचि से भर आया। अब वह उसे उसका पति नहीं, चोर, लालची और उसकी सहेली की जिन्दगी बरबाद करनेवाला लगने लगा।···और इसके बाद भी शिवानी के बार-बार पूछने पर भी प्रखर ने यह नहीं स्वीकारा कि उसके पास एक पैसा भी है।

जब मन में दरारें पड़ जाती हैं तब तन के रिश्ते व्यर्थ हो जाते हैं। शिवानी प्रखर से झगड़ा करने लगी। उसे बार-बार यही लगता था कि इस आदमी ने उसे छला है, उसे फाँसे दिये हैं···उस जैसी भोली-भाली लड़की को ठगा है।

बस, वह विद्रोहिणी बन गयी।

उसने प्रखर से उपेक्षा का बर्ताव शुरू कर दिया। उसे अपने फ्लैट से जाने के लिए कह दिया और स्वरूप के संग वह खुले आम प्रेम-प्रदर्शन करने लगी। लोग शिवानी के इस परिवर्तन की तह में न जाकर उसके इस विचित्र और गलत व्यवहार को प्रश्नभरी नजर से देखते थे, पर शिवानी ने तय कर लिया था कि यदि वह पुरुष उसकी निर्दोष सहेली को जानवरों की तरह व्यवहार करके उसे तलाक के लिए मजबूर कर सकता है तो वह क्यों नहीं कर सकती? वह प्रखर को मजबूर करेगी कि वह उससे अलग हो जाय। वह ऐसे दुष्ट पुरुष के साथ कैसे रह सकती है?

इला का उदास चेहरा, भीगी आँखें और सुबकियाँ ज्यों-ज्यों उसका पीछा करती थीं त्यों-त्यों उसके अन्तर का विद्रोह बढ़ता जाता था।

ऐसे में शिवानी सिर्फ नारी होकर अन्यायी पुरुष, रूढ़ियों से घिरे

परिवेश, रिसते घावों की तरह पीड़ा देनेवाले नाते-रिश्तों को तोड़ने के लिए अवश हो जाती थी।

किसी ने उसका दरवाज़ा खटखटाया। उसने दरवाज़ा खोला। वहाँ कोई नहीं था। केवल तेज़ हवा के झोंके थे। शायद वे भी उसके बन्द दरवाज़ों को खुलवाकर नारी की मुक्ति की कामना कर रहे हों।

श्री यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' : एक साक्षात्कार

आज मुझे बेहद प्रसन्नता हो रही है कि आप जैसे महान् कथाकार व उपन्यासकार से बातचीत करने का मुझे अवसर प्राप्त हुआ है। सबसे पहले आप 'रेणु' व 'मीरा'-पुरस्कार की बधाई स्वीकार करें। मेरी ओर से तथा उषा स्मारिका की ओर से।

उत्तर—बधाई स्वीकारता हूँ पूर्णिमा जी !

प्रश्न—आपका जन्म कब और कहाँ हुआ, साथ ही आपकी शिक्षा कहाँ हुई ?

उत्तर—१५ अगस्त १९३२ को मेरा जन्म बीकानेर शहर मे हुआ व मेरी शिक्षा भी यहीं हुई।

प्रश्न—आपकी लेखन-कला किसकी प्रेरणा द्वारा शुरू हुई ?

उत्तर—जहाँ तक लिखने की प्रेरणा का प्रश्न है मैंने किसी भी लेखक से कोई प्रेरणा नहीं ली। हाँ, साहित्यिक पृष्ठभूमि के लिए उस समय यानि सन् १९४८ के आसपास प्रेमचन्द, प्रसाद, शरत्चन्द्र, यशपाल आदि लेखक काफी लोकप्रिय थे और मेरे मानस पर उनका काफी प्रभाव पड़ा।

प्रश्न—आपके अब तक कितने उपन्यास व कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं !

उत्तर—उपन्यासों के बारे मे पूर्णिमा जी सही रूप से जानकारी आपको मैं बता रहा हूँ, आप नोट करते जायें—हजार घोडो का सवार, संधिकाल की औरत, कथा एक नरक की, तलाक दर तलाक, दो श्रेष्ठ उपन्यास, एक और मुख्यमन्त्री, खम्मा अन्नदाता, चूनर की पीडा, जनानीड्योढी, नया इन्सान, एक नियति और रक्त-कथा, खून का टीका, आँचल मे दूध आँखों में पानी, संन्यासी और सुन्दरी, अग्निपथ, शापित वह, घूँघट और घुंघरू, गुनाहों की देवी, ठकुराणी, अलग-अलग आकृतियाँ, आदमी बैशाखी पर,

प्यास के पंख, केसरिया पगड़ी, जग की रीत, धरती की पीर, पाँव में आँख वाले, प्रणप्रोत्सर्ग, बड़ा आदमी, ढोलन कुंजकली, चेहरे मत उतारो, आखिरी साँस तक, राजा महाराजा, रानी महारानी, उबाल, सिंहासन और हत्यायें, चन्दन महल की रखैल, पोस्टमैन, खूनी किला, बदला, राजमहल की रंगरेलियाँ, रंगमहल, प्रजाराम, मिट्टी का कलंक, प्रोफेसर, राहें अलग-अलग, अपने-अपने दायरे, सावन आँखों में, कलियाँ मेरे देश की, एक रास्ता और, सपना, घूंघट के आँसू, सावित्री, कमरे की कहानी, *दिया जला दिया बुझा, आदि।*

मेरे कहानी-संग्रह भी नोट कर लें—दिल्ली कब्र बन गई, ये बदरंग क्षण, राम की हत्या, एक देवता की कथा, जनक की पीड़ा, बीच के सम्बन्ध, श्रेष्ठ ऐतिहासिक कहानियाँ, मेरी प्रिय कहानियाँ, श्रेष्ठ यथार्थवादी कहानियाँ, क्षण-भर की दुल्हन, एक इन्सान की मौत एक इन्सान का जन्म, पीटर बहुत बोलता है, जकड़न, खोल, मेंहदी के फूल आदि।

प्रश्न—आपके प्रसिद्ध उपन्यास कौन-कौन-से हैं ?

उत्तर—असल बात तो यह है पूर्णिमा जी कि किसी लेखक के द्वारा अपने उपन्यासों और कहानियों में कौन श्रेष्ठ है और कौन कम श्रेष्ठ है, यह बताना बहुत ही कठिन है। इस प्रश्न का उत्तर सही ढंग से आलोचक व पाठक ही दे सकते हैं। हाँ, मैं यह कह सकता हूँ कि मुझे जो उपन्यास बहुत अधिक पसन्द हैं वे हैं—संन्यासी और सुन्दरी, दिया जला दिया बुझा, एक नियति और, खम्मा अन्नदाता, आदमी बैशाखी पर, ढोलन कुंजकली, हजार घोड़ों का सवार, चेहरे मत उतारो, जनानी ड्योढ़ी, प्रजाराम, आँचल में दूध आँखों में पानी, एक और मुख्यमंत्री, आखिरी साँस तक।

प्रश्न—आपके कितने उपन्यासों व कथा-संग्रहों को पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं व कौन-कौन-से पुरस्कार मिले हैं ?

उत्तर—मुझे इन उपन्यासों पर पुरस्कार मिल चुके हैं—खम्मा अन्नदाता, ढोलन कुंजकली, एक नियति और, हूँ गौरी किण पीवरी (राजस्थानी), संन्यासी और सुन्दरी, हजार घोड़ों का सवार।

इन उपन्यासों पर राजस्थान साहित्य अकादमी, सूर्यमल्ल पुरस्क विष्णुहरि डालमियाँ पुरस्कार, राजस्थानी ग्रे० ए० ने सर्विस का पुर

मीरा पुरस्कार, फणीश्वर नाथ 'रेणु' पुरस्कार मिले है तथा कहानी-सग्रह 'एक इन्सान की मौत, एक इन्सान का जन्म,' पर अकादमी पुरस्कार एव भारत सरकार, शिक्षा मत्रालय का भी एक पुरस्कार मिला है ।

प्रश्न—आपकी महत्त्वाकाक्षायें क्या हैं ?

उत्तर—मेरी सबसे बडी महत्त्वाकाक्षा यही है कि मैं अपने लेखन के प्रति ईमानदार रहूँ, और जो कुछ भी लिखना चाहता हूँ उसे पूरी निष्ठा से लिखता रहूँ ।

प्रश्न—आप हमेशा राज-घरानो व अन्य विशेष जातियों पर अपने उपन्यास गढते हैं, इसके पीछे कौन-से भाव हो सकते हैं ?

उत्तर—यह सोचना अधिक सही नही है क्योकि मैंने राज-घरानो के बराबर शहरी जीवन पर भी लिखा है। हाँ, मैं यह जरूर चाहता हूँ कि मैं कुछ ऐसा लिखूं जो लेखक की भीड से अलग हो, इसलिए मैंने मुख्यतया राजस्थानी एव सामती परिवेश को व जन-जीवन के यथार्थ को चुना। मेरी यह भी मान्यता है कि जब तक पुराने पीड़ादायक मूल्यो का विघटन नही होगा तब तक नये मूल्य नही बनेंगे। इसलिए मैंने सामती सस्कृति पर निरन्तर प्रहार किये ।

प्रश्न—हिन्दी मे स्वतंत्र लेखन लोगों को असम्भव लगता है परन्तु आपने लम्बे समय से स्वतत्र लेखन किया है, इसकी अ तर्कथा बताने कष्ट करेंगे ?

उत्तर—पूर्णिमा जी, आपने बहुत ही अच्छा प्रश्न किया है। वास्तव में हिन्दी मे स्वतंत्र लेखन असम्भव तो नही है, परन्तु अत्यत कठिन है। यह मैं इसलिए कह रहा हूँ क्योकि मैंने सन् १९५५ मे अत्यन्त ही स्वाभिमानपूर्ण स्वतंत्र लेखन किया है परन्तु हिन्दी मे स्वतत्र लेखन लोग इसलिए नहीं अपनाते क्योंकि हिन्दी मे पुस्तकें बहुत कम मात्रा में बिकती हैं, यही कारण है कि हिन्दी मे शुद्ध लेखक बहुत कम हैं। जब हिन्दी मे अन्य भाषा की तरह पुस्तकें बिकने लगेंगी तब स्वतंत्र लेखन अधिकांश लेखक करने लगेंगे। मैं जानता हूँ जो रचनाधर्मी है, वे नौकरी जैसी दमनपूर्ण स्थिति मे जीना पसंद नहीं करेंगे ।

प्रश्न—आप अपने कथानक कहाँ से, कैसे चुनते हैं और इसमे कितनी

कल्पना होती है ?

उत्तर—मैं अपने कथानक जीवन, लोककथाएँ, इतिहास, लोक-श्रुतियाँ एवं ग्रामीण अंचल से लेता हूँ। जब कभी मैं अध्ययन करता हूँ या यात्रा पर रहता हूँ तो मैं इस बात के लिए काफी सचेत रहता हूँ कि कौन-सी घटना एवं चरित्र नया और विचित्र है। उसे मैं डायरी में नोट कर लेता हूँ और उसके बारे में चिन्तन करता रहता हूँ ताकि रचना-प्रक्रिया के दौरान उन घटनाओं व पात्रों को समसामयिक सार्थकता का स्पर्श एवं दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाय।

प्रश्न—जैसा कि आपको कई पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं, इस विषय में कृपया आप बतायें कि पुरस्कारों का लेखन पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

उत्तर—पूर्णिमा जी ! आपने बड़ा ठोस प्रश्न किया है। वास्तव में लेखन पर पुरस्कारों का महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है क्योंकि पुरस्कार व्यक्तित्व का निर्माण करते है, व्यक्तित्व का निर्माण अन्ततोगत्वा लेखक की सही पहचान कराता है जो लेखक के लिए काफी फायदामन्द होता है। पुरस्कार से आर्थिक लाभ भी मिलता है जो इस पूँजीवादी जीवन की एक बड़ी अनिवार्यता है। पुरस्कार का प्रचार-प्रसार लेखक को आम एवं प्रबुद्ध पाठकों के समीप लाता है। इससे लेखक की लोकप्रियता बढ़ती है।

प्रश्न—आपकी लेखन-यात्रा में किन-किन व्यक्तियों का सहयोग रहा जबकि आपका वातावरण सर्वथा इसके विपरीत नजर आता है ?

उत्तर—मेरे लेखन में सबसे बड़ा सहयोग प्रारम्भ में मेरी माँ आशा-देवी का रहा, क्योंकि घर, परिवार, मोहल्ला और समाज का वातावरण इसके नितान्त विरुद्ध था ही, साथ ही आर्थिक विषमतायें भी बहुत थीं। ऐसी स्थिति में मेरी स्वर्गीय माँ जेवर बेचकर भी मुझे लेखन के प्रति प्रेरित करती रही। यदि वे नहीं होती तो शायद मैं स्वतंत्र मसिजीवी नहीं होता। इसके बाद मैं अपने दोस्त—जमना प्रसाद, बी० व्यास का भी सहयोग मानता हूँ। साथ ही अपनी पत्नी शान्ति भट्टाचार्य का जिसने हमसफर बनकर अत्यन्त ही कठिन यात्रा में रूखा-सूखा खाकर भी मस्ती से जीती रहीऔर मुझमें जीवट भरती रही।

मेरी सृजन-यात्रा में श्री रतनलाल रामपुरिया का भी एक पड़ाव है,

क्योंकि उन्होंने सन् १९५४-५५ में, साहस करके 'संन्यासी और सुन्दरी' और 'दिया जला दिया बुझा' का प्रकाशन किया। उन दो पुस्तकों के प्रकाशन के पश्चात् जो लेखन और प्रकाशन का सिलसिला चला उसने मुझे एक सन्तुष्ट जीवन दिया है।

प्रश्न—आप इन दिनों अब क्या लिख रहे हैं ?

उत्तर—मैं इन दिनों 'चन्दा सेठानी' एक लघु उपन्यास लिख रहा हूँ साथ ही चन्द कहानियाँ भी लिख रहा हूँ।

प्रश्न—आपसे अब तक काफी प्रश्न कर चुकी हूँ, आशा है पाठक इससे नई जानकारी प्राप्त करेंगे। अन्तिम प्रश्न के रूप में स्मारिका के प्रकाशन के बारे में आपकी क्या राय है विशेषत: 'उषा स्मारिका' के बारे में ?

उत्तर—पूर्णिमा जी ! आप अब तक की बातचीत के दौरान असली मुद्देवाली बात पर आ गई हैं (कहकर वे अपनी आदत अनुसार हँसने लगे व गम्भीर होकर बोले—) स्मारिका किसी विशिष्ट उद्देश्य एवंम् मन्तव्य से निकाली जाती है जिसके अर्थोपार्जन से प्राय: जन-हिताय, संस्था-विकास व स्थाई स्मृति के कार्य किये जाते हैं। यह अच्छी परम्परा है, और इसके प्रकाशन की उपयोगिता स्पष्ट है। मैं समझता हूँ 'उषा स्मारिका' भी इसके उद्देश्य से निकल रही है। मेरी हार्दिक शुभ कामना है। 'उषा स्मारिका' उषा के जीवन के बारे में जानकारी तो देगी ही, साथ ही अच्छी रचना का प्रकाशन भी करेगी।

मैं पूर्णिमा जी, आपको एव आपके पति पुखराजजी 'कलाप्रेमी' को इस भेंटवार्ता के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद देता हूँ।

(अत्यधिक व्यस्तता के बावजूद आपने जो अपना अमूल्य समय दिया उसके लिए क्षमा-सहित)

पूर्णिमा पारीक